ब्रह्मचर्य्य-साधन

निगमानन्द

सारस्वत ग्रन्थावली संख्या १

ब्रह्मचर्य्य-साधन

अर्थात्

ब्रह्मचर्य्यपालनकी नियमावली

कर्म्मणा मनसा वाचा सर्व्वावस्था सुसर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्ष्यते ।।

परमहंस परिव्राजकाचार्य्य

श्रीश्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव

प्रणीत

तृतीय संस्करण

१८६१

 मूल्य २·५०

प्रकाशक
स्वामी आत्मानन्द सरस्वती
आसाम बंगीय सारस्वत मठ
पोष्ट कोकिलामुख, जोरहाट, आसाम

मुद्रक
श्री सनतकुमार बनर्जी
स्वस्तिक मुद्रणालय
२७/१बी, विधान सरणी
कलकत्ता-६

अनुवादक
योगीराज परिव्राजक
श्री श्रीमत् ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्य देव "पीयूषपाणि"

प्राप्तिस्थान :

(१)
आसाम बंगीय सारस्वत मठ
पोष्ट कोकिलामुख, जोरहाट, आसाम

(२)
दाक्षिण बंगला सारस्वत आश्रम
पोष्ट हालिशहर, २४ परगना
(पश्चिम बङ्गाल)

(३)
महेश लाइब्रेरी
१/८ श्यामा चरण दे स्ट्रीट
कलकत्ता-१२
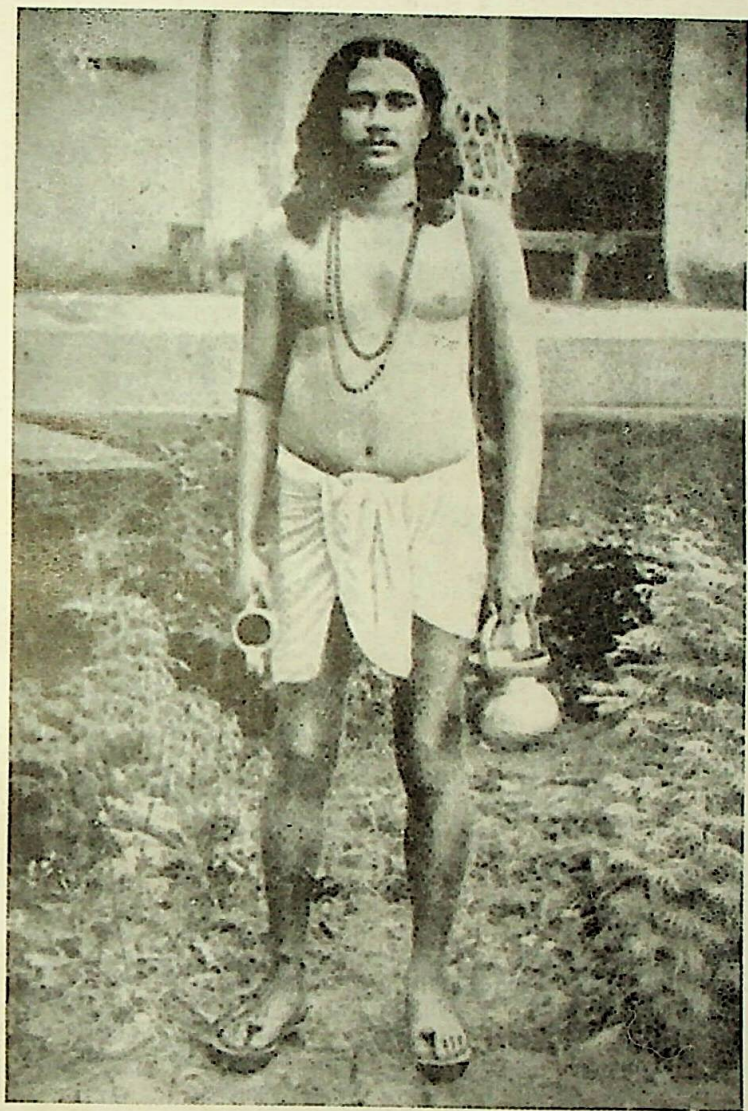
परमहंस परिव्राजकाचार्य्य

श्रीश्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव
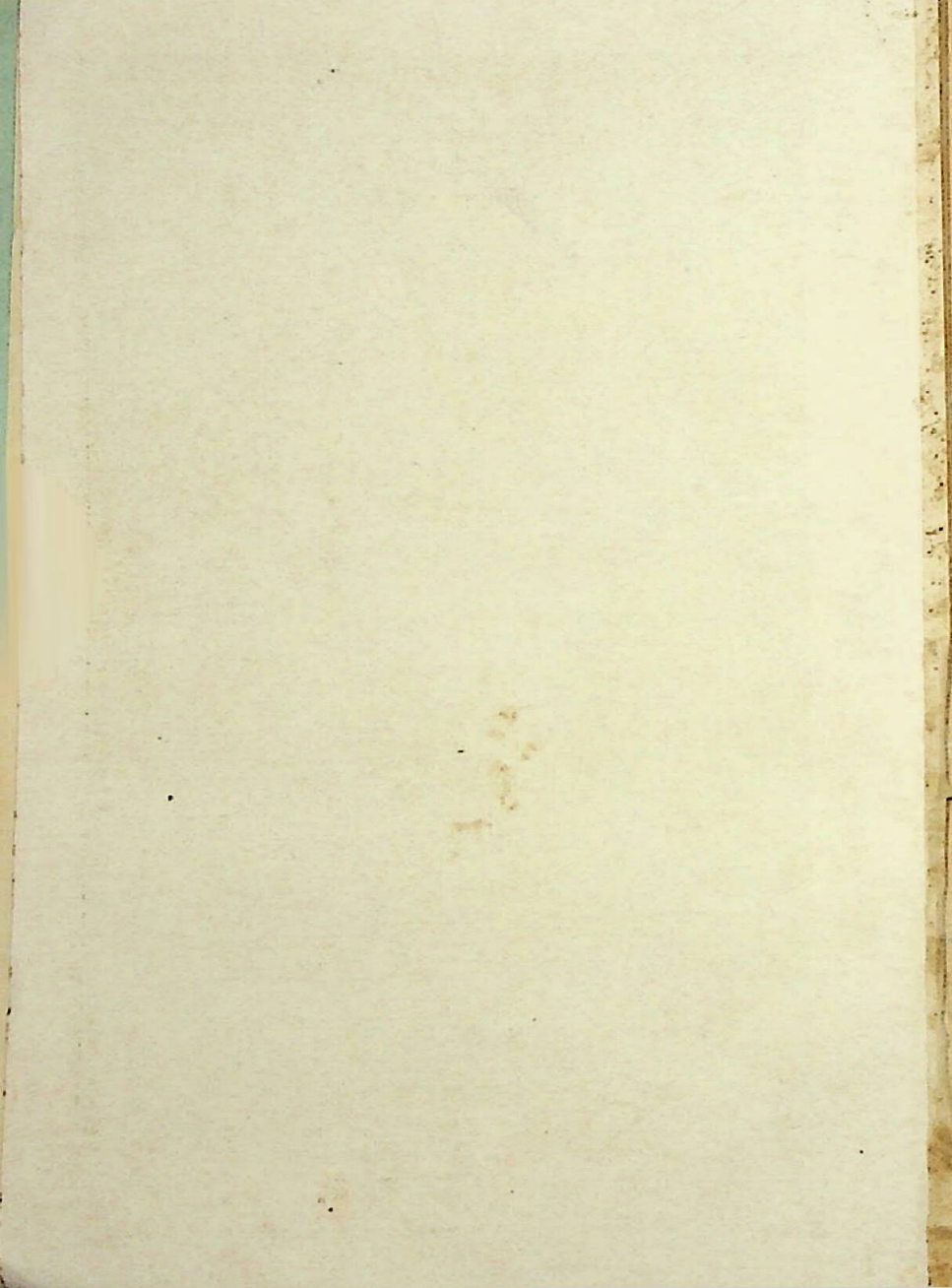
ॐ तत् सत्

समर्पण

—:०**०:—

अतीत युग के

ऋषिगणों के मंगलाशीर्वाद-स्वरूप

हिन्दूसमाजके भावी आशा-स्थल

सुकुमारमति कुमार और युवकों के करों में

यह पुस्तक

सप्रेम

समर्पित है।

ग्रन्थकार

अवतरणिका

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्माविष्णुः सदाशिवः ।
सृष्ट्यादिक समर्थास्ते केवलं गुरु सेवया ॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा सदाशिव केवल मात्र श्रीश्रीगुरुदेव की कृपा से ही सृष्टि आदि निर्माण करने में समर्थ हुए थे, मैं भी उन्हीं परम करुणामय श्रीश्रीसद्गुरु देव की अहेतुकी कृपा से भिन्न भाषा-भाषी तथा अल्पज्ञ होते हुए भी आज अपने प्यारे सुधी भाइयों के करकमलों में बङ्गला "ब्रह्मचर्य-साधन" का यह हिन्दी संस्करण समर्पण कर रहा हूँ ।

परम मङ्गलमय परमपिता के इस विश्वराज्य में जितने प्रकार के प्राणियों का परिचय मिलता है, उनमें मानव-जाति का आसन सब से सारवान् तथा समुन्नत है। इस भूमण्डल पर मानव के समान किसी दूसरे प्राणी (जीव) के होने की बात को इतिहास भी स्वीकार नहीं करता। विवेक, विद्या, बुद्धि आदि सद्गुणों से भूषित मानव-जाति भूमण्डल पर सूर्य्य के समान है। मानव-जीवन कर्म्ममय है। इसीलिए वह इस कर्म्ममय जीवन को लाभ कर जगत में ऐसे अनूठे धर्म्म तथा चरित्र विषयक आदर्श छोड़ जाता है, जो दूसरे प्राणियों के लिए किसी भी देश में किसी भी समय संभव नहीं हुए हैं,—न हो ही सकते हैं। मानव मर्त्य-जीव होकर भी अमरत्व लाभ कर सकता है, क्षुद्र होकर भी महत्व का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकता है तथा शोक-सन्तापमय संसार में रहकर भी सर्व-सन्ताप की सीमा अतिक्रम करते हुए नित्यानन्दमय शान्तिनिकेतन का परमपद लाभ कर सकता है। ऐसा भाग्य मानव के अतिरिक्त दूसरे जीवों के लिए सुलभ नहीं है। इस प्रकार

अवतरणिका

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्माविष्णुः सदाशिवः ।
सृष्ट्यादिक समर्थास्ते केवलं गुरु सेवया ।।

ब्रह्मा, विष्णु तथा सदाशिव केवल मात्र श्रीश्रीगुरुदेव की कृपा से ही सृष्टि आदि निर्माण करने में समर्थ हुए थे, मैं भी उन्हीं परम करुणामय श्रीश्रीसद्गुरु देव की अहेतुकी कृपा से भिन्न भाषा-भाषी तथा अल्पज्ञ होते हुए भी आज अपने प्यारे सुधी भाइयों के करकमलों में बङ्गला "ब्रह्मचर्य-साधन" का यह हिन्दी संस्करण समर्पण कर रहा हूँ ।

परम मङ्गलमय परमपिता के इस विश्वराज्य में जितने प्रकार के प्राणियों का परिचय मिलता है, उनमें मानव-जाति का आसन सब से सारवान् तथा समुन्नत है । इस भूमण्डल पर मानव के समान किसी दूसरे प्राणी (जीव) के होने की बात को इतिहास भी स्वीकार नहीं करता । विवेक, विद्या, बुद्धि आदि सद्गुणों से भूषित मानव-जाति भूमण्डल पर सूर्य्य के समान है । मानव-जीवन कर्म्ममय है । इसीलिए वह इस कर्म्ममय जीवन को लाभ कर जगत में ऐसे अनूठे धर्म्म तथा चरित्र विषयक आदर्श छोड़ जाता है, जो दूसरे प्राणियों के लिए किसी भी देश में किसी भी समय संभव नहीं हुए हैं,—न हो ही सकते हैं । मानव मर्त्य-जीव होकर भी अमरत्व लाभ कर सकता है, क्षुद्र होकर भी महत्व का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकता है तथा शोक-सन्तापमय संसार में रहकर भी सर्व-सन्ताप की सीमा अतिक्रम करते हुए नित्यानन्दमय शान्तिनिकेतन का परमपद लाभ कर सकता है । ऐसा भाग्य मानव के अतिरिक्त दूसरे जीवों के लिए सुलभ नहीं है । इस प्रकार

सौभाग्य सम्पन्न होने के कारण ही मानव-जीवन का इतना आदर, इतना गौरव, इतना महत्व तथा इतनी प्रशंसा धर्म्मशास्त्रों में लिखी गई है।

मानव जिस साधना की सहायता से इतनी गौरवमय, समुन्नत, शान्तिमय अवस्था लाभ कर सकता है, उसी (साधना) का नाम है संयम तथा तितिक्षा। दूसरे सब प्राणिवर्ग नैसर्गिक प्रवृत्ति के वश होकर अपना-अपना जीवन व्यतीत करते हैं ; अतः वे प्रवृत्ति का निरोध करना नहीं जानते, किन्तु वह कौशल मानव-प्राणी भली भांति जानते हैं। मानवगण सुमार्जित विद्या-बुद्धि के बल से उन्मत्त प्रवृत्ति का आवेग रोक कर अपने अपने कर्त्तव्य पथ का अवलम्बन कर लेते हैं। जिस उपाय से इस उन्मत प्रवृत्ति का निरोध कर उसके कार्य्य में बाधा डाल सकते हैं, उसे ही संयम तथा तितिक्षा कहते हैं। इस संयम और तितिक्षा की शिक्षा के लिए जिस मार्ग से चलना पड़ता है, एवं जैसा पवित्र व्रत धारण करना पड़ता है—उसी का नाम "ब्रह्मचर्य्य" है।

जन्म-जन्मान्तर की सुकृति के फल से जीव मानव-जीवन लाभ करता है। किन्तु केवल मनुष्य-जीवन लाभ होने से ही 'मनुष्यत्व' प्राप्त नहीं हो सकता। उस मनुष्यत्व लाभ के लिए ब्रह्मचर्य्य की साधना का सहारा अवश्य लेना पड़ेगा।

सर्वप्रकार की विस्मृति, भय, शोक, ताप, पाप एवं अनर्थ से मुक्त होकर चिर आनन्दमय—शान्तिमय अवस्था प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य्य ही एकमात्र ब्रह्मास्त्र है। सर्वप्रकार की सिद्धि और सर्वप्रकार की सफलता प्राप्त करने के लिए इसके समान दूसरा कोई साधन देखने में नहीं आता। अतः जीवन के विकास का एक मात्र हेतु ब्रह्मचर्य्य ही है।

परिव्राजक अवस्था में नाना देश-देशान्तर में घूमने पर श्रीश्रीगुरु महराज की असीम कृपा से इस शरीर को सम्यक् रूपेण ज्ञान हो गया कि आध्यात्मिक, आधि-दैविक तथा आधिभौतिक, इन त्रितापों से मुक्त होकर जीवन्मुक्त अवस्था लाभ

करने के लिए ब्रह्मचर्य्य की साधना का ही नींव रूप में आश्रय करना पड़ता है क्योंकि इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। ब्रह्मचर्य्य की साधना कैसे करनी चाहिए, इस विषय में श्रीश्रीगुरु महराज ने इस पुस्तक में विस्तृत रूप से आलोचना की है। अतः उस विषय में पुनरुक्ति करना निष्प्रयोजन है।

ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में मैंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। क्योंकि कई सज्जनों ने इस विषय पर अपने-अपने ढंग से पाण्डित्य पूर्ण अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस महत् प्रचेष्टा के लिए वे श्रद्धार्ह तथा धन्यवाद के पात्र हैं सही; परन्तु सत्य की रक्षा के लिये मुझे यह अवश्य ही कहना पड़ेगा कि वे सब पुस्तकें शायद अनुभव-सिद्ध बातों के आधार पर नहीं लिखी गई हैं। क्योंकि केवल ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में उपदेश देने से ही तो काम नहीं चलता। उसकी कैसे रक्षा करनी चाहिए, उसके लिए आहार-विहार, शयन-उत्थान, साधन, भजन आदि किस किस समय और कैसे करने चाहिए, इत्यादि विषयों का उन्हें पूरा अनुभव है या नहीं, इस बात का पता उनकी पुस्तकें पढ़ने पर उत्पन्न होने वाली शङ्काओं से ही लग जाता है। परन्तु इस पुस्तक के प्रणेता ने प्रारम्भ से अन्त तक जिस विधि से सभी विषयों पर प्रकाश डाला है, उसे पढ़कर सुधी सज्जन स्वयं ही समझ सकेंगे, कि प्रणेता ने इस विषय में सिद्धिलाभ करके अनुभव की बातों के आधार पर ही इस पुस्तक का प्रणयन किया है। सिर्फ यह पुस्तक ही नहीं, उन्होंने नाना प्रकार प्रणयन किया है, जो धर्म्म जगत् में एक नया आलोक प्रदान कर रही हैं और भविष्यत् में भी करती रहेंगी। * उन सब पुस्तकों में से ब्रह्मचर्य्य-साधन, योगी-

---

* अनुभूतिं विना मूढ़ो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिम्बित शाखाग्रफलास्वादेन मोदवत्॥ श्रुति॥

अर्थात्—वृक्ष की शाखा के सिरे पर लगे हुए फल का प्रतिबिम्ब जल में देखने पर उसका आस्वादन जैसा आनन्द देता है, अनुभूति-शून्य ब्रह्मानन्द भी वैसा ही आनन्दमयी होता है।

की साधनाओं में सिद्धि लाभ करके अपनी अनुभूति के साथ अनेक पुस्तकों का ज्ञानीगुरु, तान्त्रिकगुरु तथा प्रेमिकगुरु पढ़ने के लिए मैं अपने धार्म्मिक भाइयों से विशेष रूप से अनुरोध करता हूँ। यद्यपि वे सब पुस्तकें बंगला भाषा में छपी हैं, परन्तु कुछ ही दिन के भीतर उनमें से 'योगीगुरु' (द्वितीय संस्करण), माता की कृपा', उपदेश-रत्नमाला इत्यादि पुस्तकें हिन्दी भाषा में भी छप चुकी हैं; तथा उन सब पुस्तकों के प्रणेता जीवन्मुक्त महापुरुष की जीवनी भी "जीवन्मुक्त निगमानन्द" नाम से हिन्दी भाषा में निकल चुकी है। दूसरी पुस्तकों का भी अनुवाद कर रहा हूं, परन्तु अर्थाभाव के कारण उसे शीघ्रता से प्रकाशित करना मुझ जैसे भिखारी के लिये असम्भव है।

हरिद्वार में कुम्भमेले के कारण बहुत ही जल्दी में यह पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूँ। अतः अपने प्रिय सुधी पाठकवृन्द से अनुरोध करता हूं, कि मेरे भिन्न भाषा-भाषी तथा अल्पज्ञ होने के कारण यदि इसमें कुछ भूलभ्रान्ति हुई हो तो, मुझे क्षमा करने की कृपा कर भूल को सूचित करें तथा वे इसके भाषा-दोष को छोड़कर "ब्रह्मत्व" लाभ करते हुए मानव-ज़ीवन की पूर्णता प्राप्त करें। अलमति विस्तारेण।

कुम्भमेला हरिद्वार,
चैत्र, विक्रम सम्वत् १९८३

श्रीश्रीगुरु कृपाश्रित
ब्रह्मचारी गोपाल

ॐ नमः श्रीनाथाय

भूमिका

श्रीमद् गुरुदेव की कृपा से ब्रह्मचर्य्य-पालन की यह नियमावली प्रकाशित कर रहा हूँ। इस समय देश में हिन्दू-धर्म्म जाग्रत हो रहा है। धीरे-धीरे लोग जान रहे हैं कि ब्रह्मचर्य्य आश्रम ही अन्य तीनों आश्रमों की जड़ और भित्ति (नींव) है। अतः ब्रह्मचर्य्य का अभाव रहने के कारण और-और आश्रम भित्तिहीन एवं अकर्म्मण्य हो गये हैं,—देश में धर्म्म के नाम से एक अधर्म्म का स्रोत्र (झरना) बह रहा है। प्रसन्नता की बात है कि बहुत से शिक्षित सज्जनों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित हुआ है। युवकगण भी ब्रह्मचर्य्य-पालन की ओर विशेष आग्रह दिखला रहे हैं। परन्तु ब्रह्मचर्य्य-पालन की कोई धारावाहिक नियमावली न रहने के कारण बहुतों को नाना प्रकार की असुविधाएँ हो रही हैं। वर्त्तमान समय में दो एक ब्रह्मचर्य्य-विषयक पुस्तकें प्रकाशित होने पर भी वे सुकुमार-मति बालकगण के समझने योग्य तथा शिक्षा के लिए उपयुक्त नहीं हैं। हमलोगों ने "अर्य्य-दर्पण" नामक मासिकपत्र में ब्रह्मचर्य्य के नियमों के सम्बन्ध में कुछ आलोचना की थी। उसे पढ़कर कितने ही ग्राहक और पाठकगण ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित करने का अनुरोध करने लगे। अतः उनके आग्रह से उत्साहित होकर ही हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। अन्तमें "आर्य्यदर्पण" से एक पत्र यहाँ उद्धृत करके हम भूमिका-रूपी अपना वक्तव्य प्रकाश करेंगे।

मान्यवर

श्री युक्त कुमार चिदानन्द

काय्र्याध्यक्ष—"आर्य्य दर्पण"

समीपेषु ।

महाशय !

आपलोगों ने कृपा-पूर्वक शान्ति-आश्रम (वर्तमान सारस्वत मठ) से प्रकाशित "आर्य्य-दर्पण" नामक मासिक-पत्र की मुझे जो कई एक संख्याएँ भेजी हैं, वे सब मुझे मिल गई हैं ।

आपने उनमें 'ब्रह्मचर्य्य-आश्रम" शीर्षक जो प्रबन्ध लिखा है, उसे पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । इस विषय की कईएक बातें जानने के लिए आपकी सेवा में यह पत्र लिख रहा हूँ । आशा है कि सदुपदेश देकर आप महानुभाव मुझे सुखी करेंगे ।

ब्रह्मचर्य्य पर मेरा अत्यन्त अनुराग (प्रेम) है सही ; लेकिन दुःख की बात है, कि यथासमय में इस विषय को नहीं जानता था और इसकी उपकारिता से भी अपरिचित था; किन्तु अब मैं सभी बातें समझ रहा हूँ, फिर भी अब समझने से क्या लाभ ? जो सर्वनाश होने का था, वह तो हो ही गया है । अब वीर्य्य-धारण क्या करूँगा ? नाना प्रकार के अत्याचार और अनाचार से वीर्य्यक्षय करके अब पशुत्व प्राप्त किया है । यदि पहले कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य्य की उपकारिता के सम्बन्ध में समझा कर, उस विषय की शिक्षा देता तो, जीवन देवमय बन जाता, —ऐसा सत्यानाश नहीं होता । किन्तु तब उपायक्या है ?—क्या कर सकूंगा ? इस समय एकविंश वर्ष की अवस्था में ही पहुँचा हूँ—किन्तु इसके पूर्व कई वर्ष

हो गए विवाह भी कर चुका हूँ। ऐसी अवस्था में ब्रह्मचर्य्य की रक्षा कैसे हो सकती है? इसी उपदेश के लिए आपके चरणों में उपस्थित हो रहा हूँ। आशा है कि आप मेरी आशा पूर्ण करने की कृपा करेंगे।

हृदय में अनेक अशाएँ थीं लेकिन एक भी पूर्ण नहीं हो रही है ; नहीं जानता कि भगवान् कब मेरी वे आशाएँ पूर्ण करेंगे। प्रायः दो वर्ष हो गये हैं, परम पूज्य-पाद श्रीनिगमानन्द स्वामीजी महराज की "योगीगुरु" पुस्तक कहीं से मेरे हाथ पड़ गई, उसे पढ़ कर मेरा आज्ञानान्धकार नष्ट हो गया ; मैंने उसे बहुत कुछ समझा भी है।

समझा,—परमहंस देव की ही बात सच है—आजकल गुरुगिरी (गुरु बन जाना) एक प्रकार का कारोबार जैसा हो गया है। किन्तु कुलगुरु परित्याग करने को शास्त्रों ने मना किया है ; और पहले कुलगुरु से मन्त्र लेने के पश्चात् शिक्षा के लिए उपगुरु (सद्गुरु) कर सकने की आज्ञा दी है, —उसीके अनुसार मैंने वि० सं० १९६१ में पैत्रिक-गुरु से मन्त्र ग्रहण कर लिया है। किन्तु अब ईशानचन्द्र शील महाशय से परमहंस देव का पता जान कर उनके श्रीश्रीचरण-कमलों में पहुँचने के लिए विशेष उत्कण्ठित हो उठा हूँ। पर अर्थ के अभाव से विशेष चेष्टा करने पर भी अब तक नहीं जा सका। न मालूम भगवान् कब मेरी मनोवाच्छा (मन की इच्छा) पूर्ण करेंगे। मेरे पिताजी विद्यमान हैं; परमहंस देव के पास जाऊँ—यह उनकी इच्छा बिलकुल ही नहीं हैं। यदि मैं स्वाधीन होता या उपार्ज्जनक्षम (अपना पैसा कमाने योग्य) हो जाता तो शायद इतने दिनों में मैं उनके श्रीचरण-कमलों में अवश्य उपस्थित हो जाता। मुझे कहीं भी जाना पड़े तो पिताजी के पास से खर्च मांगना पड़ता है, यदि वे खर्च देते हैं तो जाना होता है, नहीं तो नहीं होता। मैं खुद भी कुछ नहीं कमाता कि जिसके

द्वारा रास्ते का खर्च चला सकता,—इसीलिए भाग्य पर भरोसा रखकर बैठा हूँ। न मालूम भगवान् ने भाग्य में क्या लिखा है। आप लोगों का "आर्य्य-दर्पण" (मासिक-पत्र) कई एक महीने से मिल रहा है, ग्राहक बनने की भी विशेष इच्छा है, किन्तु क्या करूं ? इस विषय में पिताजी के पास से एक पैसा भी नहीं मिलता है। अर्थात् धर्म्म-विषयक किसी पुस्तक या पत्रिका के लिए वे पैसा भी देने को राजी नहीं हैं।

"योगीगुरु" को पढ़ कर मैंने समझ लिया है, कि वीर्य्यधारण न कर सकने से मैं किसी भी विषय में कृतकार्य्य नहीं हो सकता हूँ। क्योंकि ऐसा सुनने में आता है कि वीर्य्यक्षय होने से भक्ति-भाव सभी प्रायः नष्ट हो जाते हैं ; सुतरां साधन-भजन विड़म्बना मात्र हैं। परमहंस देव ने लिखा है कि "संयम और अभ्यास से सब कुछ हो सकता है"—मैं भी यही समझता हूँ लेकिन फिर भी कुछ नहीं कर सकता हूं। मैं प्रबल संसार-मायाबद्ध, पाश-बद्ध हूं, मेरी क्या शक्ति है कि मैं संयम और अभ्यास से वीर्य्य-धारण कर सकूँ ? बहुतेरी कोशिश करके देखी, किन्तु अष्टाङ्ग-मैथुन त्याग करना मेरी शक्ति के बाहर है। गृहस्था-श्रम परित्याग कर सकूंगा या नहीं—यह नहीं कह सकता। संसार-परित्याग करने की चेष्टा भी की थी, किन्तु न त्याग सका। उस समय देखा कि संसारा-स्वादग्रहणेच्छु (विषय सुख का स्वाद चखने वाला) मन अपनी उन्मत्त जिव्हा लप्-लपाकर लार टपका रहा है। मन कहता है, संसार भी नहीं छोड़ूंगा, और भग-वान् का भी दर्शन करूंगा। बड़ी विषम समस्या है—"पैसा भी कम दूंगा, गाना भी अच्छा सुनूंगा।" ऐसी दशा में क्या करना चाहिए ? इस अवस्था में मेरे लिए एक सद्गुरु की विशेष आवश्यकता है—यदि वे पथ न बतावेंगे तो मेरे लिये दूसरा और कोई उपाय नहीं रह जायगा। परमहंस देव के पास में जा सकूंगा

इसका भी कोई सुयोग सुविधा नहीं देख रहा हूं। साथ ही यह भाग्यहीन उनके पास जाने में भी डरता है, क्योंकि मुझ जैसे पापी की यदि वे उपेक्षा करें तो! आज तक मैंने कितने पाप किये हैं—इसका कोई ठिकाना नहीं है; इसीसे यह पाप कलुषित हृदय लेकर उनके पास जाने में भी भय होता है। दूसरी बात वहाँ जाने का कोई उपाय भी नहीं है—वे अन्तर्य्यामी हैं, वे सब समझ रहे हैं। भय के मारे मैं उनके नाम पर पत्र तक नहीं लिख सका। आप उनके भक्त हैं; यदि आप की कृपा होगी तो, अवश्य ही उनकी भी कृपा हो सकेगी—इसी आशा से आपके चरण कमलों में उपस्थित हो रहा हूं: अनुग्रह करके इस भाग्य हीन के प्रति कृपा दृष्टि कीजिए, यही मेरी विनीत प्रार्थना है।

इस समय मेरे मन में ऐसी धारणा उत्पन्न हुई है कि सिवा ब्रह्मचर्य्य के और दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करने से मन की एकाग्रता का साधन करना सहज होगा; सुतरां साधन-भजन का भी फल लाभ हो सकेगा। नाना प्रकार की पुस्तकालोचना से मैं समझ चुका हूँ कि विवाहित-जीवन में भी मनुष्य ब्रह्मचर्य्य की रक्षा कर सकता है। परमहंस देव की "योगीगुरु" पुस्तक में भी यह बात लिखी है एवं ब्रह्मचर्य्य-साधन" नाम दूसरी पुस्तक में वे आलोचना करेंगे, यह भी योगीगुरु में उन्होंने लिखा है। उन्होंने "ब्रह्मचर्य्य-साधन" पुस्तक लिखी है या नहीं यह भी मालूम नहीं, किन्तु यदि लिखी हो तो अनुग्रह पूर्वक मुझे संवाद दीजियेगा।

माघ महीने का 'आर्य्य-दर्पण" पढ़ने से ज्ञात हुआ कि परमहंस देव की "ज्ञानीगुरु" नामक पुस्तक निकल गई है। पिताजी के पास रुपया मांगने से नहीं मिलेगा—यह मैं जानता हूँ, सुतरां मेरे पास जो कुछ है, उसीसे अब एक प्रति 'ज्ञानीगुरु" और "आर्य्य-दर्पण" का ग्राहक बनने की इच्छा की है। आर्य्य-दर्पण की

दूसरी तीसरी एवं चौथी संख्या मुझे मिली है ; केवल पहली संख्या नहीं मिली : अतएव मुझे एक प्रति ज्ञानीगुरु एवं एक प्रति प्रथम संख्या "आर्य्य दर्पण" उचित मूल्य पर वी० पी० से भेज दीजिए एवं उसी पार्सल में मेरे इस पत्र के उत्तर में सदुपदेश देने की भी कृपा कीजिएगा। अपनी करुणापूर्ण आत्मकथा आपके चरणों में निवेदन की है। आशा है कि इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह अनुग्रह-पूर्वक लिखेंगे। आपकी कृपा होने से परमहंस देव की भी कृपा हो सकेगी ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है, क्योंकि भगवान् भक्त के अधीन होते हैं। पूर्वजन्म के सुकृति-फल से ही सम्भवतः परमहंस देव का सन्धान (पता) मिला है ; लेकिन केवल सन्धान मिलने से ही क्या होगा ! अब तक भी तो उनके श्रीचरण-कमलों में उपस्थित नहीं हो सका। मेरा विश्वास है कि आपकी कृपा करने से ही मुझे सब कुछ प्राप्त हो सकेगा। मैंने मानव होकर भी पशुत्व लाभ किया है,—अज्ञानान्धकार में डूब रहा हूँ,—मुझ पर कृपा कीजिये ; अधम (नीच) पापी समझ कर घृणा मत कीजिए। एक हिसाब से तो भगवान् पर पापियों का ही अधिकार अधिक है, क्योंकि वे अधम-उधारण पतित-पावन हैं। मेरे इस आज्ञानान्धकार को दूर कर दीजिए—यही मेरी विनीत प्रार्थना है। पापी के हृदय में साहस विलकुल नहीं होता—अतः वह भीत एवं संकुचित रहता है। भगवान् के पास जानेका उसे साहस नहीं होता, उनसे उसे भय लगता है। मेरी भी ठीक वही दशा है !—एक तो मेरी, अवस्था कम है,—दूसरी बात मैं पाप से जर्ज्जरित हो रहा हूँ—इसीसे मन में नाना प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं ! आप कृपा कीजिए,—मेरी रक्षा कीजिए। परमहंस देव के पास जाने के लिए मुझे साहस नहीं होता है।—दूसरी बात वहां जाने का उपाय भी मैं नहीं देखता हूँ। अतः मेरा कर्त्तव्य क्या है, बतला दीजिए—आप जैसा कहेंगे, मैं वैसा करूंगा। बहुत जल्दी पहली संख्या "आर्य्य-दर्पण" और एक प्रति "ज्ञानीगुरु"

भेज दीजिये एवं मुझे अपने कर्त्तव्य के विषय में उपदेश दीजिए—यही मेरा अनुरोध है। ब्रह्मचर्य्य के लिए मैं क्या करू, इस सम्बन्ध में भी लिखियेगा ; जिससे मेरी और अधोगति (पतन) न होने पावे। इतनी कृपा अवश्य कीजिएगा —यही मेरी प्रार्थना है। इति—"

पाठक ! नाना प्रकार से विचार करके मैं पत्र-लेखक का नाम-धाम (पता) प्रकट करने में असमर्थ हूँ, लेकिन जैसा पत्र आया था, ठीक वैसा ही मुद्रित कर दिया है। "आर्य्य-दर्पण" पत्र में "ब्रह्मचर्य्य-आश्रम" शीर्षक प्रबन्ध प्रकट होने के बाद ही चारों ओर से इस ढङ्ग के अनेक पत्र प्रतिदिन हमारे पास आ रहे हैं। नमूने-स्वरूप ही एक पत्र ऊपर प्रकाशित किया है। अधिकांश पत्र-लेखक स्कूल-कालेज के विद्यार्थी हैं, जिनकी उम्र १६ से २३।२४ वर्ष के बीच की है।

देश को उन्नत करनेवाले महामन्य नेतागण तथा समाज संस्कारकगण ! इस समय आपलोग एकबार शान्तचित्त से विचार करें कि देश की कैसी शोचनीय अवस्था हो रही है—कैसे सर्वनाश के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। देश का यह एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है ; इसीसे अधिकांश मनुष्य इस विषय में अन्धे जैसे हो रहे हैं—केवल कुछ-एक सज्जनों की दृष्टि ही इस ओर पड़ी है। हिन्दू वंश ध्वंस की ओर अग्रसर हो रहा है। अब भी सब व्यक्ति सावधान हो जायँ तो अच्छा, नहीं तो रक्षा होने का कोई उपाय न रह जायगा। जिन लोगों ने यह अभिमत प्रकाश किया है कि "विधवा-विवाह के बिना हिन्दुओं की संख्या दिन-दिन घटती चली जा रही है", उनकी बातों पर हम विश्वास नहीं कर सकते। क्योंकि, समाज में यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि एक-एक स्त्री १७-१८ सन्तान प्रसव करती है; परन्तु उनमें रहती दो एक ही हैं। यदि सभी

सन्तानें जीवित रहती (विधवा विवाह का प्रचार करने पर भी) तो हिन्दुओं की संख्या बहुत ही अधिक बढ़ जाती।

इससे कहते हैं, कि सीधी और सच्ची राह को छोड़कर टेढ़ी राह पर चलने और चिल्लाने से कोई लाभ न होगा। यदि छात्र-जीवन में ब्रह्मचर्य्य का पालन करवा कर सच्ची और प्रकृत शिक्षा का विस्तार न किया जायगा तो देश का कभी भला न होगा। वीर्य्यहीन पिता का पुत्र अपना शौर्य्य-वीर्य्य खोकर सदा दुर्ज्जय (असाध्य) रोगों से ग्रस्त रहता है एवं अकाल में ही (पूर्णावस्था न होते ही) काल के गाल में चला जाता है। परन्तु जो हो गया है, उसके लिए सोचना-विचारना-वृथा है। भविष्य के लिए सावधान होकर युवकों की रक्षा कीजिए। ब्रह्मचर्य्य से क्या लाभ होता है' यह लोगों को समझा दीजिए। जो शिक्षा मनुष्य को मनुषत्व प्रदान करती है, उसका प्रचार लज्जाजनक यथा कुरुचि-सम्पन्न समझकर यदि निश्चेष्ट बैठा जायगा तो हिन्दुओं की रक्षा न हो सकेगी। हम लोगों ने आयु, बल, स्वास्थ्य मेधाशक्ति, धारणशक्ति, सत्‌साहस, उच्चाशा,—आदि संक्षेप में यदि कहें तो जिसे जीवन का यथासर्वस्व कहा जाता है, वह सभी खो दिया है ;—और इसका एक मात्र कारण ब्रह्मचर्य्य का अभाव है।

जिन युवकों की समझ में ब्रह्मचर्य्य का लाभ आ गया है, वे भी अपने अभि-भावकों के अत्याचार से ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन नहीं कर पाते। कितने ही पिता-माताओं की धारणा है कि यदि पुत्र मांस, मछली खाना छोड़ देगा तो सन्यासी हो जायगा। अनेक शिक्षित पिता तो डाक्टरों का मत प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि मांस, मछली न खाने से आँख की बीमारी पैदा होने की सम्भावना रहती है विशेषतः उससे वे बलशून्य हो जाती हैं एवं मस्तिष्क विकृत हो जाता है। परन्तु हम पूछते हैं कि, कौन विधवा वंगनारी किम्बा पश्चिम-

भारत के हिन्दूगण मांस, मछली को ध्वंस करनेवाले युव की भाँति चश्मे (ऐनक) व्यवहार करते हैं ? रही शक्ति की बात ? सो शायद सभी सज्जन जानते होंगे कि एक पंजाबी या महाराष्ट्रीय युवक मांस, मछली खानेवाले दश युवकों का सामना कर सकता है। स्वास्थ्य की बात भी ऐसी ही है। मांस-भोजी की भाँति दुबला पतला कौन होगा ? पुरुषों को धातु-दौर्बल्य, प्रमेह और नारी को बाधक प्रदर की बीमारी न हो,—ऐसे स्त्री पुरुष कितने हैं ;—हम नहीं कह सकते।

परन्तु उन्हें जान रखना चाहिये कि स्वात्त्विक भोजन में बहुत से गुण हैं,—पौराणिक युग के ऐसे अनेक उदाहरण अब भी मौजूद हैं। चावल और कच्चा केला खाकर ही ज्ञानगरिष्ठ ऋषि श्रेष्ठ वशिष्ठ, व्यास, पतञ्जलि, जैमिनि प्रभृति महात्माओं ने आध्यात्मिक ज्ञान के आलोक (प्रकाश) से भारतवर्ष को आलोकित कर दिया था। चौदह वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य पालन करके ही मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीश्रीरामचन्द्र के भाई लक्ष्मण इन्द्रजीत को मारने के लिए समर्थ हुए थे। एकविंशती बार क्षत्रियों को मारनेवाले परशुराम का अमित विक्रम भी बाल-ब्रह्मचारी भीष्मदेव के सामने झुक गया था। वर्त्तमान युग के प्रोफेसर राममूर्ति के आलौकिक पराक्रम की बात कौन नहीं जानता ? यह सभी ब्रह्मचर्य्य का फल है। लोकमान्य तिलक, गोखले की भांति कितने भारत सन्तान के मस्तिष्क परिष्कार हैं ? सुतरां इन सब युक्तियों को दिखाकर ब्रह्मचर्य्य पालन में अनादर दिखाना पाश्चात्य सभ्यता के विषमय फल के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

उपरोक्त पत्र में यह भी प्रकाशित हुआ है कि पिता अपने पुत्रों को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने या धर्म्म के उपदेश प्राप्त करने की छुट्टी या सुयोग भी नही देते। उनके दुर्बल हृदय में सर्वदा के लिये यही भय रहता है कि साधुसंग या सद्-ग्रन्थादि के पढ़ने से लड़का धार्म्मिक हो जायगा और अर्थ उपार्ज्जन न करेगा।

किन्तु इसमें पिता-माता का भी ज्यादा दोष नहीं है—क्योंकि उन्हें धर्म्मरक्षा की शिक्षा ही नहीं मिली है। इसीलिये कहना पड़ता है कि वर्त्तमान समय के अधिकांश मातापिता हिरण्यकशिपु के एक विशेष अवतार है! हमें मालूम हुआ है, किसी श्रेणी के एक पुत्र के जमीदार (zaminder) पिता ने पुत्र का धर्म्मभाव देख एक वेश्या को इनाम का लोभ देकर पुत्र को ठीक राह पर लाने के लिये नियुक्त किया था!

पाठक! क्या इससे भी अधिक हिन्दूसमाज की कोई दुर्दशा हो सकती है? चाहे लाख सभासमितियों द्वारा देशोन्नति की चिल्लाहट मचायी जाय, परन्तु प्रकृत शिक्षा हुये बिना कभी सुफल नहीं प्राप्त किया जा सकता! वैसी आशा करना भी वृथा है; इसीलिये पद पद पर विड़म्बना होती दिखाई देती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब तरह की उन्नतियों की भित्ति धर्म्म है। प्रकृति शिक्षा के द्वारा जब धर्म्म भाव पुष्ट हो जायगा, तभी देश की यथार्थ उन्नति आरम्भ होगी। क्या धर्म्म के बिना कभी अहमत्व या आमित्व का संकीर्ण फन्दा कटकर विश्वमय प्रेम प्रसारित हो सकता है? क्या धर्म्म के बिना कभी कोई दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का बलिदान कर सकता है?

इसीसे कहते हैं कि चाहे कितनी ही वक्तृता के जोर से विश्व को कँपा डालिये, परन्तु यह निश्चय जान रखिये कि माँजने धोने से रूप एवं बलात्कार से प्रेम पैदा नहीं होता है। सच्ची उन्नति प्राप्त करना हो तो पहले धर्म्म बल को प्राप्त करना चाहिये। धर्म्म बल लाभ करने के लिये ब्रह्मचर्य्य का पालन करना बहुत ही आवश्यक है। केवलमात्र पुस्तक पढ़ने या वक्तृता से धर्म्म बल नहीं प्राप्त किया जा सकता। हिन्दुओं के अलावा भी पृथ्वी के अन्य सभी धर्म्म सम्प्रदायों में प्रत्यक्ष भाव से न सही, परोक्ष भाव से तो अवश्य ही ब्रह्मचर्य्य का

पालन हुआ करता है। हाँ—देश, काल और पात्र भेद से उनके प्रकारों में विभिन्नता हो सकती है। हमारे देश की विधवा महिलाएँ आयु, स्वास्थ्य और सौन्दर्य्य से विभूषित होकर जीवन भर ब्रह्मचर्य्य का महिमा की घोषणा किया करती हैं और हम लोग खेचरों (उड़नेवालों) में गुड्डी (पतंग) जलचरों में मगर एवं चतुष्पदों में खाट को छोड़कर बाकी सभी को उदरस्थ कर समूचे देश को भगवान् का अस्पताल बना रहे हैं।

अतएव यदि देश की उन्नति की वास्तविक इच्छा हो, तो सर्वसाधारण को सबसे पहले यह समझा दीजिए कि ब्रह्मचर्य्य की कमी के कारण कैसी हानियाँ हो रही है, किन्तु केवल यह कहकर वक्तृता देने से काम न चलेगा कि "ब्रह्मचर्य्य का अवलम्बन करो"। इस कार्य्य के लिये धनियों को धन, विद्वानों को ज्ञान और सर्वसाधारण को अध्यवसाय लेकर तैयार होना पड़ेगा। सबसे पहले विद्यार्थियों के सत्-साहस और दृढ़प्रतिज्ञा की विशेष आवश्यकता है। एकदिन में ही देश की यह कमी दूर हो जायगी यह आशा करना दुराशा मात्र होगा। पहले इस बात का प्रबन्ध करना होगा कि प्रथम प्रयत्न में ही यदि ब्रह्मचर्य्य का पालन न हो सके तो युवकगण कम से कम ब्रह्मचर्य्य की उपकारिता को तो अच्छी तरह हृदयङ्गम करलें और अपने पुत्रों के ब्रह्मचर्य्य-पालन का पथ प्रशस्त करदें। प्रत्येक जिले के शहर और विशिष्ट गाँवों में ऐसे विद्यालयों की स्थापना करनी चहिए जहाँ विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य्य पालन की सुविधा हो। देश के साधु-महात्माओं को भी दश-पाँच युवकों की ब्रह्मचर्य्य-प्रतिष्ठा में सहायता का प्रयत्न करना चाहिए। धनी की सहायता पाने पर दो-चार कृतविद्य साधु निःस्वार्थभाव से ब्रह्मचर्य्य-आश्रम खोलकर देश का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं।

भारत वर्ष से बहुत दिनों से ब्रह्मचर्य्य उठ जाने के कारण हिन्दू-समाज की

अवस्था बहुत कुछ उलटी हो गयी है। सुतरां हमें विशेष अध्यवसाय के साथ कार्य्यक्षेत्र में अग्रसर होना पड़ेगा। साधु, महात्मा, धनी, ज्ञानी, श्रमजीवी, छात्र, शिक्षक और अभिभावकों की एकत्र चेष्टा से, जिस में कि हमारी सन्तान ब्रह्मचर्य्य महाव्रत का अवलम्बन कर शक्तिशाली हो सके ऐसा उद्योग किया जाना चाहिये। यही प्रत्येक स्वदेश-हितैषी के जीवन का महाव्रत होना चाहिए। अपना-अपना व्यक्तिगत क्षुद्रत्व भूलकर यदि इस महाव्रत का अवलम्बन किया जाय तो अलग-अलग परिवारों के एकत्र उद्योग से अवश्य ही हिन्दूजाति की उन्नति होगी।

जिस समय हमने पहले-पहल इस आश्रम में ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दिया था, उस समय कितनों ही ने इसे व्यङ्ग-पूर्वक हँसी में उड़ा दिया था; परन्तु इस समय ब्रह्मचारी छात्रों की मुखश्री और स्वास्थ्य को देखकर बहुत से मनुष्य आग्रह के साथ ब्रह्मचर्य्य-पालन के लिये व्यग्र हो रहे हैं। सत्य की महिमा ज्योति की भाँति आप ही आप प्रकाशित होती है। पर हम समाज में नगण्य हैं—हमारी यह शक्ति नहीं है कि सर्वसाधारण को आश्रम में रखकर ब्रह्मचर्य्य-पालन कराया जा सके। फिर भी जो उपदेप ग्रहण करना चाहें, उन्हें आदर और आग्रह के साथ उपदेश दिया जायेगा। अंत में यदि इस पुस्तक को पढ़कर ब्रह्मचारी युवकों का कुछ उपकार हुआ तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

सारस्वत मठ
अक्षय तृतीया, २८ वां वैशाख
१३१७ वंगाब्द।

विनीत—
श्री कुमार चिदानन्द
प्रकाशक।

सूचीपत्र

प्रथम अध्याय—नियम-पालन

द्वितीय अध्याय—साधन-प्रणाली

तृतीय अध्याय—स्वास्थ्यरक्षा-विधि

"जयगुरु"

ब्रह्मचर्य्य-साधन

प्रथम अध्याय

नियम-पालन

वर्त्तमान अवस्था

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

आयुर्वेदः ।

धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों को प्राप्त करने के लिए सर्वतोभावेन शरीर का आरोग्य रखना बहुत ही आवश्यक है। शरीर के रोगग्रस्त या अकर्म्मण्य हो जानेपर किसी भी कार्य्य की सिद्धि नहीं की जा सकती।

हम लोग सब कुछ जानते हैं, सब कुछ समझते हैं; दोष, गुण तथा परनिन्दा इत्यादि के सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं; परन्तु ऐसा कोई भी उपाय नहीं कर सकते जिसके द्वारा दीर्घ-जीवन प्राप्त करते हुए संसार में सत्-कर्म्मान्वित (अच्छे कर्मों से युक्त) होकर मानव-समाज की कुछ उन्नति कर सकें। पढ़ते समय अध्यापक महोदय ने अनेक राजाओं के जीवन-चरित्र, एलिजाबेथ के

समान रानियों के चरित्र बल और कहाँ कौन सागर है, मांस में कितने यवक्षारादि हैं, इत्यादि बहुत से विषयों की समालोचना द्वारा हमारे मन का इतना उत्कर्ष (विकाश) कर दिया है कि जिसके कारण हम तुलसी-वृक्ष को जङ्गली घास, विल्वपत्र को साधारण वृक्ष ? गऊ को पशु तथा माता-पिता को कर्त्तव्य-कर्म्म-संयोजक मानकर बहुत से विषयों की गम्भीर तथा गवेषणापूर्ण समालोचना करना सीख गये हैं। हमारी अवस्था इतनी कुटिल तथा हीन भावापन्न हो गई है कि हम किसी के सामने मस्तक नहीं झुकाना चाहते। सोडावाटर न पीने से हमारा हाज़मा ठीक नहीं होता। क्योंकि गङ्गाजल या स्वच्छ नदी का जल मटीला होता है, उसमें अनेक प्रकार के कीड़े तथा कीचड़ मिला रहने के कारण हमारे लिए वह अनुपयोगी होता है।

ये सब हमारे दोष नहीं है, बल्कि एक मात्र वर्त्तमान शिक्षा के ही फल हैं। क्योंकि हम ने पहले से ही "एनालाईज" (विश्लेषण) करना सीखा है! यदि बाल्यावस्था से ही हम सीखते कि—गंगाजलं सेव्यम् असेव्यम् अन्यत्, अर्थात गङ्गाजल का ही पान करना चाहिए, अन्यजल इसके समान नहीं है तुलसी का रस सर्दी को नष्ट करता है,—उस की जड़ वीर्य्य-वर्द्धक होती है, । विल्वपत्र वातनाशक होता है, शङ्खिनी का रस प्लीहा-नाशक है, माता-पिता परमगुरु हैं – ये सब बातें यदि हम समझ सकते तो कभी भी हमारे लिये सोडावाटर तथा मुर्गी इत्यादि का मांस, जिसका कि स्पर्श तक न करना चाहिए, मिश्री के होते हुए भी रिफाइन की हुई चीनी, घृत की उपस्थिति में भी चिकेन-व्रथ अथवा सुगन्धित पुष्पों के होते हुए विलायती घास का इतना आदर न होता। हमलोग विदेशी-शिक्षा के प्रभाव से इतने शक्तिशाली हो गये हैं कि ज़रा-सी ही विद्या के अभिमान से अथवा समाज में कोई ऊँचा पद पा जाने से ही अपनी मित्र-मण्डली में

एक बड़े परिवार का पालन करने वाले दरिद्र पिता को घर का नौकर कहे बिना सन्तुष्ट नहीं हो सकते। शिक्षा के प्रभाव से हमारी दृष्टि इतनी ऊँची हो गई है कि हमारा धर्म्म धर्म्म ही नहीं रह गया है, हमारी शिक्षा शिक्षा ही नहीं है, हमारे संसार की सर्वस्व भारतीय महिलाओं की स्त्रियों में गणना ही नहीं है, हमारी आयुर्वैदिक औषधि औषधि ही नहीं है एवं हमारे क्रिया-कर्म्म की धर्म्म में गणना ही नहीं है। इसका कारण केवल यही है कि धर्म्म-रक्षा के लिऐ हमें शिक्षा ही नहीं मिली।

आजकल के मर्त्यलोक के माता-पिता भी सोचते हैं कि हमारा लड़का किसी तरह से (चाहे प्रश्न-पत्र चुरा कर ही) यदि एकबार बी. ए. एल. एल. बी. पास कर ले तो फिर किसी बात की चिंता न रह जाएगी। परन्तु क्या उन्होंने कभी यह भी जानने की कोशिश की है कि मेरा लड़का कितने दिनोंतक जीवित रहेगा अथवा "सारं श्वरशुरमन्दिरं" सोचकर हमें अन्न-वस्त्र से भी वञ्चित करेगा? यदि पिता को पुत्र से केवल धन तथा यश की ही कामना हो तो उसका कर्त्तव्य है कि विदेशी-शिक्षा के साथ ही साथ ही हमारा धर्म्म क्या है, किस प्रकार शरीर की रक्षा करनी चाहिए किस प्रकार इन्द्रियों का संयम तथा चरित्र-गठन करना उचित है और किस प्रकार शरीर बलवान् हो सकता है, इत्यादि बातों की भी उसे शिक्षा दे। कुनैन के साथ ही साथ गिलोय और पित्तपापड़ा के गुण-दोष भी समझा देना चाहिए। हिन्दू के देवी-देवता कौन हैं मैं क्या हू, हिन्दूधर्म्म संसार के सब धर्म्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ क्यों है, मनुष्य किस प्रकार अच्छे अच्छे गुणों से सम्पन्न हो सकता है, किस प्रकार का काम करने से देश की उन्नति हो सकती है और अपने शरीर से दस आदमियों का उपकार हो सकता है, इत्यादि विषय भी बालकों को सिखलाना हमारे विचार से पिता माता का बहुत ही आवश्यक

कर्त्तव्य है। क्योंकि अल्पावस्था से ही यदि बालक को सत्‌शिक्षा न देकर केवल राक्षसी-विद्या की ही अधिक आलोचना कराई जाय तो भविष्य में उस बालक के हृदय पर राक्षसी भावों का अधिकार होने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। मैं अपनी राष्ट्रीय-शिक्षा-समितियों के कार्य्य कर्त्ताओं से राष्ट्रीय विद्यालयों में दो एक धर्म्म-शिक्षक नियुक्त कर उनके द्वारा सुकुमार-मति बालकों के कोमल हृदय में धर्म्म का बीज बोने की व्यवस्था करने के लिए अनुरोध करता हूँ।

संसार में यदि श्रेष्ठत्व प्राप्त करने की इच्छा हो तो सब से पहले शारीरिक-उन्नति करना आवश्यक है,—क्योंकि जीवन की रक्षा न होने से सब कुछ वृथा है। किन्तु उस जीवन की रक्षा कैसे करनी चाहिए, यह अधिकांश लोगों को मालूम नहीं है अथवा वे लोग इस बात को जानने की इच्छा ही नहीं रखते हैं। आजकल के युवकगण शिक्षा तथा संसर्ग के दोष से वृद्ध बनकर गुप्त-भाव सेनगुप्त (वैद्यों) महाशय के दरवाज़े पर घूमते हुए अन्त में चन्द्रगुप्त (चित्रगुप्त) के यहाँ इजहार देने के लिए हाज़िर हो जाते हैं। प्रिय पाठक वृंद ! आज हमारा भेकत्व (मेंढकत्व) प्रकट हो गया है। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि :—

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः।
अलिरेति वनात् कमलं नहि भेकस्त्वेकवासाऽपि च ॥

—केवल गुणीलोग ही गुणियों का आदर किया करते हैं। कमल कौन सा पदार्थ है, इस बात को यथार्थ रीति से केवल भ्रमर ही समझ सकता है, कमल के पास रातदिन रह कर मेंढक उस के गुणों को नहीं समझ सकता।

हमारे धर्म्मशास्त्र में जो अमूल्य हीरे के टुकड़े जगमगा रहे हैं हम उन्हें काँच के भ्रम से दूर फेंक देते हैं। यदि हम जौहरी होते तो हमारी इतनी दुर्दशा कदापि नहीं होती, हम लोग सदा ही सुखसे समय व्यतीत कर सकते। भगवान्

ने कहा है, कि संसार में मनुष्य के हृदय में ज्ञान उत्पन्न होते ही समस्त बुरे कर्म्म नष्ट हो सकते हैं। यथा :—

यथैन्धांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्ज्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥
गीता ४।३८

यदि ज्ञानी ही एकमात्र उन्नति का साधक है, तो वह ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है, इस बात का अनुसन्धान करना विज्ञलोगों का (चतुर लोगों का) परम कर्त्तव्य है। एक तो हम में अधिकांश लोग अंधे हैं, तिसपर सद्गुरु का भी अभाव है, जो लोग उपदेश दिया करते हैं, उनमें से भी अधिकांश तो हमलोगों की अपेक्षा भी अधिक ज्ञानशून्य हैं। अतः ऐसी दशा में हमारी इस प्रकार की दुर्दशा हो तो आश्चर्य्य ही क्या है? किस की बातोंपर विश्वास करें? —जो लोग एकबार जागने को कहते हैं वे ही फिर लौट कर कहते हैं कि अभी मत उठना, क्योंकि रात है।

ऐसी दशा में क्या करना चाहिए? ऐसे समय पर तो अपनी ईश्वर-दत्त मनुष्यता की ही शरण लेनी उचित है—क्योंकि उन्होंने ही हमलोगों में से प्रत्येक व्यक्ति को कर्म्मक्षेत्र में अवतीर्ण होने के लिए ज्ञान दिया है ; सुतरां तनिक स्थिर होकर उसी ज्ञान के सहारे विवेक के साथ यदि हम चल सकें तो सदा "सम्हालो-सम्हालो" करके इस मानव-जीवन का पालन न करना पड़ेगा। हमारे शरीर-रूपी रथ में विवेक-रूपी श्रीकृष्ण सारथी के रूप से प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दोनों घोड़ियों की बागडोर धारण करके विषादमग्न शिष्य तथा मित्र अर्ज्जुन-रूपी मन को सदा ही गीता-रूपी अमृत का पान कराया करते हैं। अतएव विवेक की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त करना सब का ही कर्त्तव्य है।

ज्ञान उत्पन करने का प्रधान उपाय है मनको संशय-हीन करना। क्योंकि मन में सन्देह बना रहने से विश्वास नहीं उत्पन्न होता है और विश्वास के उत्पन्न हुए बिना वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इस के लिए उदाहरण-स्वरूप इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि "ईश्वर का अस्तित्व है"—किन्तु उसे किसी ने भी नहीं देखा, केवल विश्वास ही इस बात को मानने का एकमात्र हेतु है। इसलिए कहा जाता है कि पहले संशयशून्य होने में पहले दुष्कर्म्म का त्याग करके शास्त्रानुसार कर्म्म करना चाहिए ऐसा करते ही संदेह का नाश हो जाता है। सन्देह के नष्ट हो जानेपर विश्वास एवं विश्वास के साथ ही ज्ञान आप से आप उपस्थित हो जाता है। प्रत्येक देहधारी के लिए जैसे आहार-विहार इत्यादि इत्यादि नित्य आवश्यक होते हैं; उसी तरह ज्ञान की वृद्धि के लिए प्रतिदिन यत्न करना भी आवश्यक है। क्योंकि पशु के समान प्रतिदिन केवल भोजन में ही समय नष्ट करने से हम में मानव नाम का जो एक प्रधान अधिकार है, वह अवश्य ही उत्तरोत्तर नष्ट हो जायगा। जिस प्रकार शरीर की रक्षा के लिए नित्य उत्तम भोजन और परिश्रम करने की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही ज्ञानी बनने की इच्छा करने पर भगवान् के द्वारा निर्दिष्ट किए हुए नियमों का सर्वदा पालन करना आवश्यक है—क्योंकि मतवाले हाथी के समान दुर्दम्य मन को धैर्य्य-रूपी रस्सी से यदि न बाँध सके तो कभी हमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। मन का संशय जितना ही अधिक बढ़ जाता है, मन उतना ही उत्तेजित होता है। इसलिए सब से पहले नम्र होकर सद्गुरु का अन्वेषण करना चाहिए और फिर उपदेश ग्रहण करके उस के पालन एवं कर्त्तव्य कर्म्म का संयोजन करना चाहिए;—ऐसा करने से विश्वास अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है। हमलोग उपयुक्त गुरु के अभाव से उचित शिक्षाप्राप्त करने से वञ्चित रह जाते हैं,

इसी कारण असीम ज्ञान से सम्पन्न आर्य्य-वंश में जन्म पाकर भी हम अकर्म्मण्य हो गये हैं तथा हमारी गणना कहीं भी नहीं होती है एवं हम सदा रोग, शोक तथा अपने सञ्चलित कर्म्मों के नाश हो जाने के कारण, कर्म्म के बन्धन में पड़कर हाय-हाय करके मर रहे हैं।

प्राचीन भारत में शिवाजी के समान ऋषियों की अद्भुत शक्ति की बातें तो शायद जगदम्बा-माता की कृपा से आजकल प्रायः सब को मालूम हैं ; परन्तु उन के ऐसे अद्भुत पराक्रम का मूल कारण क्या है, इस बात को एकबार एकाग्र चित्र करके क्या आप लोगों ने कभी सोचा है। छात्र-जीवन में ब्रह्मचर्य्य ही (वीर्य्यधारण करना ही) उन की शक्ति का एकमात्र कारण था।

कितनी शताब्दियां बीत गईं, भारतवासियों की इस शक्ति के मूल में कुठाराघात हो रहा है। आजकल ब्रह्मचर्य्य का नाम तक नहीं रह गया है,— पुरुषानुक्रम (वंश परम्परा) के अनुसार सर्वरोगों को नष्ट करने तथा सर्वरोगों की उत्पत्ति को रोक देने वाले एवं भारत की प्राचीन उन्नति और पुनरुत्थान के एकमात्र बीजमन्त्र—इस छात्र-जीवन में ब्रह्मचर्य्य-व्रत को नष्ट करके भारतवासीगण आजकल अपने समस्त अधिकारों से च्युन हो गये हैं और न जाने कितनी असाध्य व्याधियों के फन्दे में पड़कर क्रमशः नष्ट होते चले जा रहे हैं। पितामह में जो शक्ति थी वह पिता में नहीं रही, और पिता की शक्ति संतान में बिलकुल ही क्षीण हो गई। क्योंकि वर्त्तमान काल के युवकवृन्द चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से, शिक्षा के दोष से या दीक्षा के प्रभाव से अथवा अनाचार या अनाहार के कारण किंवा बुरे भोजन से हो या रोगों के भार से ही क्यों न हो किन्तु जो कुछ थोड़ी-बहुत शक्ति उन्होंने अपने माता-पिता से प्राप्त की है, उसे भी सर्वदा को नष्ट करने के लिए वे वाध्य हो रहे हैं, अथवा अपनी इच्छा से ही उसे

नष्ट कर रहे हैं—उन्हें रोकने का कोई भी साहस नहीं करता और न ऐसा करने की किसी की आवश्यकता ही प्रतीत होती है।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आजकल प्रायः सैकड़ा ७५ मनुष्य क्षयरोग अर्थात् यक्ष्मा से ग्रस्त दिखाई देते हैं, क्योंकि सब का शरीर क्रमशः क्षीण हो रहा है। चाहे किसी भी कारण से हो, शरीर क्षीण होने को ही आयुर्वेदीय तथा डाक्टरी मत के अनुसार 'क्षय रोग' कहा जाता है। क्षय का कोई न कोई लक्षण आजकल प्रायः सभी मनुष्यों में दिखाई पड़ता है। प्रायः बहुत से लोगों का शरीर शीर्ण (सूखा हुआ), लावण्यशून्य (सुन्दरता-रहित), तेज-हीन, मन स्फूर्तिहीन, दृष्टि क्षीण तथा केश पके हुए दिखाई पड़ते हैं ;—ऐसा कोई विरला ही मनुष्य है जिसमें वीर्य्य-सम्बन्धी दोष न हो। चिन्तन-शक्ति, विचार-शक्ति, धारण-शक्ति आजकल प्रायः अधिकांश लोगों में नहीं है। ऐसी शक्ति तो प्रायः किसी में नहीं है कि मस्तिष्क चला कर किसी एक नवीन तत्त्व का आविष्कार करें ; प्रायः सभी लोगों को दूसरे का अनुकरण करना अच्छा लगता है। 'ये बले राम तार सङ्गे याम' यानी जो राम बोलता है, उसी के सङ्ग चलने को तैयार हैं, सभी प्रायः ऐसा करते हैं ;—सत्साहस किसे कहते हैं, यह तक कोई नहीं जानता। यह तो हुई एकादश इन्द्रियों में प्रधान इन्द्रिय मन की बात ; किन्तु अन्यान्य दस इन्द्रियों की शक्ति भी आजकल बहुत कम हो गई है। आजकल के लोग चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् इत्यादि से शून्य होकर ही प्रायः यूनीवर्सिटी (विश्व-विद्यालय) से निकला करते हैं। यहाँ तक कि आजकल के लोग मृत्यु के समय मृत्यु के सब लक्षण प्रकाशित हुए बिना ही मर जाया करते हैं।

जब आजकल ही ऐसी दशा है तो पुश्त के बाद क्या होगा, इसका अनुमान बड़ी आसानी से किया जा सकता है। इसी से कहना पड़ता है कि भारत-

वासी धीरे-धीरे विनाश की ओर जा रहे हैं ;—भला, उन्हें कौन रोके ? अगर कोई स्वदेश हितैषी हो तो उसका यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह इस क्षय-रोग से भारतवासियों की रक्षा करे ।

आजकल भारतवर्ष के कल्याण और सुधार के लिए समाज में एक बड़ा भारी आन्दोलन उठा हुआ है । भगवान् की कृपा से एवं न मालूम कौन सी एक महा-शक्ति के प्रभाव से सारे भारतवासियों की आँखें खुल गई हैं । इस शुभ मुहूर्त्त में प्रत्येक देशहितैषी का कर्त्तव्य है कि वह कोई ऐसा उद्योग करे, जिसमा फल स्थायी हो । अभीतक बहुत लम्बी-चौड़ी बातें की जा चुकी हैं सही, परन्तु असली काम अब भी आरम्भ नहीं हुआ है । अंग्रेजी-शिक्षा का अभियान करनेवाले समाज-सुधारकों, और उन्नति के प्रेमी महाशयों से यही प्रार्थना है कि वे भारत के पुनरुत्थान तथा संस्कार के मूलमन्त्र को न भूलें, एवं वृक्ष की जड़ काटकर शाखापर पानी न सींचे । प्राचीन काल के त्रिकालदर्शी महात्माओं के मत से जीव का जन्म संस्कार ही प्रधान संस्कार है । यदि मानव प्राणी विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करके गृहस्थ धर्म्म का अवलम्बन करे, तो उसके बालबच्चे अवश्य ही हृष्टपुष्ट बलवान, सत्साहसी, दीर्घजीवी (चिरायु) और धार्मिक होंगे, ऐसा होनेपर सामाजिक उन्नति, जातीय-उन्नति, धार्म्मिक-उन्नति, तथा राज-नैतिक उन्नति इत्यादि सभी प्रकार का उन्नतियाँ अपने आप हो जायँगी । इस प्रकार के मेधावी (प्रतिभाशाली), धैर्य्य वीर्य्यशाली और सुसंस्कार सम्पन्न (अच्छे संस्कारों से युक्त) जीव अवश्य ही कर्म्मवीर बनेंगे एवं वे यदि इस कर्म्मभूमि भारत में राख को हाथ से छू देंगे तो सुवर्ण हो जायगा । किन्तु, आजकल तो हम सुवर्ण छू दें तो वह भी खाक हो जाता है । ऐसा होने पर धीरे धीरे इस भारतवर्ष से तमोगुण चला जायगा एवं सत्व और रजोगुण उत्पन्न होगा ; सोने का भारत फिर सोने का भारत हो जायगा - तब यह श्मशान भूमि न रहेगा ।

इसी से कहता हूँ कि विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना ही सर्वरोगों का प्रतिषेधक (रोकनेवाला), सर्वरोग विनाशक (नष्ट करनेवाला) तथा भारत के पुनरुत्थान का एकमात्र बीजमन्त्र है। आइये, तत्त्वदर्शी महात्माओ, अभिभावक, संरक्षको, अध्यापको, और विद्यार्थियो! आप सभी लोग एक ही स्वर मिलाकर फिर से उसी महाशक्ति को प्रकटाने के लिये हृदय से प्रयत्न करें—देखिये कि इस प्रयत्न का कोई सुफल प्राप्त होता है या नहीं।

"यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ?"

लड़का अच्छा हो, यही हमारी हार्दिक इच्छा है। क्योंकि, पिता पुत्र के लिये जो कुछ सम्पति छोड़ जाता है, उसमें से सर्व प्रकार की सम्पत्तियों में विद्या और सत्स्वभाव हों सर्वप्रधान होते हैं। यदि यही दो बातें न हुई तो चाहे कितनी ही पैतृक सम्पत्ति क्यों न हो, उस की रक्षा होना असम्भव हो जायगा। परन्तु पिता माता को इस विषय की हार्दिक इच्छा होने पर भी वे अपने इच्छानुसार कार्य्य करने के लिए तैयार नहीं हैं। जन्म से सात आठ वर्षतक हम लड़के को हमेशा अपने पास रखते हैं और उस के स्वास्थ्य की ओर हमारा विशेष ध्यान रहता है। परन्तु, दस बारह वर्षके बाद उस की ओर हमारी जरा भी दृष्टि नहीं रहती, उसकी देख-रेख करने की हम आवश्यकता ही नहीं समझते—हमारी रुचि में विकार हो जाने के कारण एक प्रकार की "यमलज्जा" (मिथ्या संकोच) आकर उपस्थित हो जाती है। यह "यमलज्जा" ही हमारे जातीय अधःपतन की मूल है। जबतक हम इस यमलज्जा को त्यागकर बाल्यावस्था की भाँति अपने पुत्रों का स्नेह और यत्न-पूर्वक सदैव ही अपने पास न रखने लगेंगे तथा उन के स्वास्थ्य की ओर पूर्णरूप से ध्यान न देंगे, तब तक यह कहना कि हम अपने पुत्र पौत्रादि की उन्नति के लिये प्रयत्न करते हैं, सर्वथा सारहीन ही होगा।

यदि जातीय उन्नति के लिये सचमुच हृदय में अभिलाषा हो तो केवल राज-नैतिक-कार्य्य और सभा-सोसाइटियों में ही विशेष ध्यान न देकर हमारा प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए कि अपने बच्चों की शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए सर्वान्तःकरण से (जी तोड़ कर) उद्योग करें; जिससे वे बुरी संगति में न पड़ कर अपने धर्म्म के मार्ग पर चलें और अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये सदा तैयार रहें। यह कभी न समझना चाहिये कि स्कूल में भेज देने से ही अपने बच्चों की ओर से हमारा उत्तरदायित्व पूरा हो गया। क्योंकि जाति की उन्नति या अवनति के कारण केवल विद्यार्थी ही हैं। उनका चरित्र जिस ढंग से गठित होगा, जातीय उन्नति या अवनति भी ठीक उसी ढंग से होगी। अतएव विद्यार्थियों की शारीरिक और मानसिक शक्ति जिन उपायों से बढ़ सके, उन्हीं की ओर तीक्ष्ण दृष्टि रखना प्रत्येक देशहितैषी का प्रधान कर्त्तव्य है। भला, इस विषय में लज्जा करने से कैसे काम चल सकता है? वृक्ष की जड़ काटकर शाखा पर पानी डालने से क्या लाभ?

अपनी शक्ति को स्वयं नष्ट करके यदि विजेता एवं विजातीय राजा से शक्ति के लिये रोयें तो भला, वह हँसने के अलावा और क्या कर सकेगा? वह हमें क्यों कर सत्ता देगा? अगर हमें वह सत्ता दे ही दे तो भी हम उसे कैसे रख सकेंगे? हम जो अपने में मेधाशक्ति, (स्मरणशक्ति), धारणशक्ति, प्रतिभा, सत्साहस, उच्चाशा आदि शक्तियाँ—यथासर्वस्व खो बैठे हैं—इसका एकमात्र कारण है विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन न करना। अब यदि फिर से उस शक्तिलाभ के लिये हम दूसरे के सामने रोयें तो उपहास के सिवा और क्या लाभ हो सकता है?

आजकल के प्राच्य और क्या पाश्चात्य, दोनों विद्याओं का अभिमान करने

वाले व्यक्तियों में से दो एक महत्-पुरुषों को छोड़कर कोई भी न तो किसी मौलिक-तत्व का आविष्कार कर सकता है, और न महत्वपूर्ण मूल-ग्रन्थ ही लिख सकता है ; मौलिक-तत्व का आविष्कार करना या महत्वपूर्ण मूल-ग्रन्थ लिखना तो दूरकी बात है, आर्य्यऋषियों के बनाये हुए तत्त्वों को समझने की शक्ति भी अधिकांश लोगों में नहीं होती। सारांश, प्रकृत ज्ञान उपार्ज्जन करना आजकल हम लोगों के लिए एकप्रकार से असम्भव ही हो गया है। क्या यही उन ऋषि-मुनियों की सन्तानों का परिचय है ? वे लोग वेद, वेदान्त, ज्योतिष, आयुर्वेद इत्यादि नाना प्रकार के शास्त्र प्रणयन (बना) कर संसार में अपना नाम अमर कर गये हैं। उनके जीवन का व्रत ही था परोपकार करना और उन्हीं की सन्तान होकर हमलोग वास्तव में ऐसे अशक्त तथा दुर्वल हो गये हैं कि वैसे कुछ करना तो दूरकी बात, यूनिवार्सिटी की साधारण-सी परीक्षाओं को पास करने और सामान्य साधारण या (छोटी मोटी) जीविका कमालेने के अलावा हमारे शरीर से संसार का कोई कार्य्य ही नहीं हो सकता। आज भी हमारी नस-नस में उन्हीं महात्माओं के रक्त-वीर्य्य बह रहे हैं, किन्तु विद्यार्थी-जीवन में ब्रह्मचर्य्य का पालन न करने से हम शक्तिहीन हो गये हैं। अतः अब हमारे जीवन के सर्वप्रयत्न से वही महाव्रत होना चाहिए, जिससे कि आगे हमारी सन्तान फिर से उसी महाव्रत का अवलम्बन करके शक्तिशाली बन सके।

मेरे विचार से 'गतं न शोचयेत्' यानी बीती हुई बात के लिए पछतावा करना व्यर्थ है। लेकिन, जिन लोगों के लिये अभी भी अवसर है, उनकी उन्नति के लिये चेष्टा करने से प्रत्येक अभिभावक (संरक्षक) अपने स्वार्थ और परमार्थ दोनों की रक्षा कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक परिवार सुखी हो सकता है और भिन्न-भिन्न परिवारों की एकता एवं सुखमय अवस्था के कारण हिन्दू जाति की उन्नति भी हो सकती है।

केवल 'ब्रह्मचर्य्य-धारण' करने का उपदेश देने से काम नहीं चल सकता। अतः जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि विद्यार्थी एवं उनके पिता-माता तथा शिक्षक और अभिभावक इत्यादि सब लोगों को मिल कर इसके लिए यत्न करने आवश्यकता है। सब से पहले तो विद्यार्थियों को विशेष सत्साहसी तथा दृढ़ प्रतिज्ञ करना चाहिये। भगवान् के श्रीचरणों में निष्कपट चित्त और सरल भाव से प्रार्थना तथा सत्संग करना ही इस विषय में उनकी प्रधान-रूप से सहायता कर सकता है। भोजन के सम्बन्ध में भी संयम करना आवश्यक है। आज भी देश में अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोग सर्वत्र ही पाये जाते हैं—जरा ही अनुसन्धान करने से भलेबुरे का पता लग सकता है।

इस के बाद ऐसे विद्यालय स्थापित करने चाहिए जहाँ कि ब्रह्मचर्य्य-पालन करने की विद्यार्थियों को सुविधा हो क्योंकि केवल सत्संग तथा भोजन में संयम करना ही यथेष्ट नहीं हो सकता। पुरुषानुक्रम (पुश्त दर पुश्त) से ब्रह्मचर्य्य नष्ट करके भारतवासी लोग जन्म से ही शक्तिहीन हो गये हैं। पितामह और पिता की (बाप-दादों की दुर्बलता) क्रमशः सन्तान में भी आ रही है। इसी कारण वे लोग जन्म से ही जैसी दुर्बलता तथा उस के सहचर कुछ रोगों को अपना साथी बना रहे हैं; उसे हजारों प्रयत्न करने पर भी वे दूर नहीं कर सकेंगे। इसीलिये 'ब्रह्म चर्य्य' क्या है, उस की आलोचना में प्रवृत होकर उपाय निश्चित करना आवश्यक हो गया है।

ब्रह्मचर्य्य क्या है ?

वीर्य्यधारणं ब्रह्मचर्य्यम् ।

—पातञ्जल दर्शन

वीर्य्य के धारण करने का नाम ब्रह्मचर्य्य है ।

शरीर के शुक्र (वीर्य्य) धातु को शुद्ध-रूप में तथा दृढ़ रखने के लिये जो उपाय किया जाता है,—वही ब्रह्मचर्य्य है । वीर्य्य ही शरीर रक्षा का सर्वस्व है । हमारे वैद्यक-शास्त्र में भी इस बात पर बहुत जोर दिया गया है । जैसे—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ॥
शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ।
गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥
ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम् ॥

—सुश्रुतः ।

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद (चर्बी) से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र (वीर्य्य) की उत्पत्ति होती है । वीर्य्य सौम्य, श्वेतवर्ण, स्निग्ध एवं बल तथा पुष्टिकारक होता है । वही गर्भ का बीज स्वरूप, शरीर का

सार एवं जीव के जीवन का प्रधान आश्रय है। रस से वीर्य्य तक सात धातुओं के तेज को उजः (ओज) कहते हैं। यद्यपि इसका मुख्य स्थान हृदय है, परन्तु यह सारे शरीर में व्याप्त रहता है। और यही शरीर की रक्षा का प्रधान कारण है।

वीर्य्य के नष्ट हो जाने पर 'उजः' धातु नष्ट हो जाता है, क्योंकि वीर्य्य ही ओज-स्वरूप आठवीं धातु का आश्रय-स्थान है। ओज पदार्थ ब्रह्मतेज के नाम से विख्यात है। पाश्चात्य विद्वान इस पदार्थ को ह्यूमन मैग्नेटिज़म् (*Human magnetism*) कहते हैं। उनके मत से भी यह शरीर रक्षा का एकमात्र सार पदार्थ है। इसका अभाव होने से मनुष्य की सुन्दरता, शारिरीक-शक्ति, इन्द्रियों की स्फूर्ति, बुद्धि, स्मरण-शक्ति तथा धारण-शक्ति आदि सब नष्ट हो जाती हैं और शरीर यक्ष्मा, प्रमेह, निर्बलता इत्यादि नाना प्रकार के रोगों का आलय (घर) बन कर क्षीण हो जाता है। मनुष्य ऐसी दशा में हर तरह के कार्य्यों में उदासीन एवं जड़वत् होकर थोड़े ही दिनों में काल के गाल में चला जाता है। शरीर शास्त्र के ज्ञाता पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस बात को बार-बार दोहराया है। डाक्टर फ्यालूरेट ने लिखा है :—

Debility of intellect and especially of the memory characteries the mental alienation of the licentious.

अतएव कोई भो काम करना हो तो शरीर की रक्षा करना सब से अधिक आवश्यक है— शरीर रक्षा के लिए वीर्य्य-रक्षा अथवा ब्रह्मचर्य्य का साधन करने की विशेष आवश्यकता है।

प्राचीन-काल में ब्राह्मण लोग अपने अपने पुत्रों को नवें वर्षमें व्रतबन्ध करने के बाद ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण कराकर गुरु के पास अध्ययन के लिए भेज देते थे।

ब्रह्मचर्य्य की साधना में सिद्धिलाभ करके वे ही युवक गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए विवाह किया करते थे। जिस व्यक्ति का वीर्य्य एक बार दृढ़ रूप से सुरक्षित हो चुका फिर भला उस के लिए क्या चिन्ता? केवल पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही जो थोड़ा-सा व्यय होता था, वह भी उसकी अपनी इच्छा के अधीन था।

परन्तु अब वह दिन नहीं रहे। अब बुरी शिक्षा तथा बुरे आचरण के प्रभावों से स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थी तक वीर्य्य नष्ट करते हैं। बालक से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक सभी लोग क्षणस्थायी सुख के लिए स्वाभाविक और अस्वाभाविक उपाय से वीर्य्य नष्ट कर के जीवन के सारे सुखों को मिट्टी में मिला देते हैं और वज्र गिरने से जले हुए वृक्ष की भाँति घूम रहे हैं। उन की उत्पन्न की हुई सन्तान और भी निर्बल तथा निर्वीर्य्य होकर जन्म ग्रहण करते हुए भी जिन्दगी भर नानाप्रकार की दुर्जय (असाध्य) रोग-यन्त्रणा भोग कर अकाल ही में काल के गाल में चली जा रही है।

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्य्यं अपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

ब्रह्मचर्य्य अर्थात वीर्य्यधारण ही सब से बढ़कर उतकृष्ट तपस्या है। जो व्यक्ति इस तपस्या में सिद्धि प्राप्त कर के ऊर्ध्वरेता होते हैं,—मृत्यु उन की इच्छा के अधीन रहती है तथा वीरता सदा उन में निवास करती है। इच्छा होने पर वे अद्भुत साधन कर सकते हैं। वीर्य्य के ऊर्ध्वगामी यानी ऊपर की ओर जाने से वे अतुल (अपार) आनन्द लाभ करते हैं। इसी कारण भीष्म तथा परशुराम जगद्विजयी वीर हुए थे तथा इसी कारण से महाशक्तिशाली इन्द्रजित् का

संहार करने के लिए रामानुज वीर लक्ष्मण ने चौदह वर्षतक ब्रह्मचर्य्य का पालन किया था।

श्रवणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

हृदयमें काम की प्रवृत्ति करके रति विषयक बातें सुनना या कीर्त्तन करना, केलि करना, दर्शन करना, एकान्त में बातचीत करना, संकल्प करना उस विषय के लिए उद्योग करना तथा क्रियानिष्पत्ति करना यही मैथुन के आठ अंग है ; —इन के विपरीत कर्म्म को ब्रह्मचर्य्य कहते हैं।

सारांश, ब्रह्मचर्य्य-साधना का उद्देश्य यही है, कि विपरीत वृत्तियों का उत्थापन करके क्रमशः इस साधना में सिद्धिलाभ की जाय।

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः।

— पातञ्जल दर्शन।

ब्रह्मचर्य्य की प्रतिष्ठा होने से वीर्य्यलाभ होता है वीर्य्य सञ्चित होने पर मस्तिष्क (दिमाग) में प्रबल-शक्ति का सञ्चय होता है, – इस महती "इच्छाशक्ति" के बल तथा प्रभाव से मन की एकाग्रता साधन करना सरल हो जाता है। ब्रह्मचर्य्य के ही प्रभाव से मानव के शरीर में ब्रह्मतेज तथा स्त्री के शरीर में सतीत्व की विमल ज्योति प्रकाशित होती है।

प्रिय सुधि पाठकवृन्द ! अबतक जो कुछ आलोचना की गई है, उस से आप समझ गये होंगे कि ब्रह्मचर्य्य कौन सी वस्तु है और ब्रह्मचर्य्य-आश्रम के अभाव से हिन्दूजाति तथा इस सुपवित्र भारत-भूमि की कैसी दुर्दशा हो रही है।

प्राचीन-काल में हिन्दू-समाज में मनुष्य का जीवन चार भागों में विभक्त था ; यथा पहला—ब्रह्मचर्य्य, दूसरा—गार्हस्थ, तीसरा—वानप्रस्थ और चौथा सन्यास। परन्तु आजकल केवल ब्रह्मचर्य्य-आश्रम के अभाव से शेष तीनों आश्रम भी शिथिल हो गये हैं। जड़ काट डालने से जैसी दशा वृक्ष की शाखाओं, डालियों तथा फल-फूलों की होती है, ठीक वही दशा आज हिन्दू-समाज की भी हो गई है। ब्रह्मचर्य्य-आश्रम ही सारे आश्रमों की नींव है। इसीसे आजकल गृहस्थाश्रम कहने से भोजनालय तथा शयनालय के अतिरिक्त मन में और किसी प्रकार के भी पवित्र भाव की उत्पत्ति नहीं होती है। यदि तुम सचमुच मनुष्य-जीवन का सदुपयोग करना चाहते हो, यदि तुम सचमुच शारीरिक, वैषयिक (भोग-विलास की), मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हो ; तो अपने पुत्र और पौत्रों को बाल्यावस्था में यानी छात्र-जीवन में ही ब्रह्मचर्य्य-व्रत का अवलम्बन कराओ। जिन-जिन नियमों का पालन करने से ब्रह्मचर्य्य की सिद्धि होती है, मैं एक एक करके उनका वर्णन करता हूँ। शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के संयम से ब्रह्मचर्य्य-आश्रम गठित हुआ है ; अतः पहले शारीरिक अर्थात् बाहर के नियमों संयमों की पद्धति का विवेचन किया जाता है।

प्रातः कृत्यः

ब्रह्ममुहूर्त्त में यानी सूर्य्योदय से एक या डेढ़ घण्टे पहले ही शय्या त्याग देनी चाहिए और ठंडे जल से दोनों आँखों को भली-भाँति धोना चाहिये। शौच इत्यादि से निवृत्त होकर मिट्टी और जल से खूब मल-मल कर दोनों हाथ और पैर अच्छी तरह से धोना चाहिए । जिस वस्त्र को पहन कर मल त्याग करे

उसे बदल देना आवश्यक है ; नहीं तो केवल एक अंगोछा पहन कर पाखाने जाना चाहिये। पश्चात् हाथ पैर आदि को धोना चाहिये। पेशाब करने के बाद भी जल से शरीर की शुद्धि करना चाहिये ; इस विषय में कदापि आलस्य करना उचित नहीं है। शौच के सम्बन्ध में निष्ठावान् ब्राह्मण के नियमों का अनुकरण करना चाहिये। इस प्रकार बाहरी पवित्रता के सहारे से धीरे-धीरे चित्त की वृत्ति शान्त हो जायगी—चित्त पवित्र हो जायगा।

दातुन का उपयोग न करके निम्न दंत-मंजन से ही दाँतों को साफ करना चाहिये ;—सफेद खरिया का चूर्ण एक छटाँक, सुपारी का चूर्ण * छटाँक भर, नमक छटाँक भर, फिटकारी का चूर्ण आधी छटाँक, सौंठ और मिर्चका चूर्ण आधी छटाँक तथा कपूर दश रत्ती, इन सब चीजों को भली-भाति पीसकर मिलाने से ही दाँत का बहुत अच्छा मञ्जन बनता है। इन वस्तुओं से बाजार के मञ्जन की अपेक्षा अधिक अच्छा मञ्जन बन जाता है। इसका उपयोग करने से स्वास्थ्य की भी रक्षा होती है और धन भी बचता है। इस के द्वारा दाँतों को बहुत लाभ होता है और मुंह का क्लेद तथा दुर्गन्धि भी नष्ट हो जाती है। इसी के द्वारा प्रतिदिन दाँत साफ करना चाहिए। जीभी से जबान साफ़ करना भी न भूलना चाहिये।

* सुपारी को कड़ाही में या हांडी में जरा सा भूंज लो—जले नहीं।

स्नान विधि

प्रतिदिन पहले प्रहर में यानी नौ बजे के पहले स्नान करना बहुत लाभ-दायक होता है। तेल लगाना पहले आवश्यक नहीं है ; लेकिन जिसे इस का अभ्यास हो उसे पहले अपने सारे शरीर में सरसों का शुद्ध तैल अच्छी तरह मल कर स्नान करना चाहिये। प्रथम पैर के अंगूठे के नाखून, नाक, कान तथा नाभिकुण्ड इत्यादि में तैल डालना चाहिये। अगर सर्दी या कफ की अधिकता न हो और शरीर में किसी प्रकार का भारीपन मालूम न हो तो ठंडे जल से अवगाहन स्नान करना ही अच्छा है। परन्तु जाड़े के दिनों में शरीर के लिये सुख-स्पर्श हो ऐसे गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये। स्नान के समय तौलिये या अंगोछे से सारे शरीर को भली-भाँति पोंछने के बाद गीला वस्त्र छोड़कर साफ तथा शुद्ध वस्त्र पहनना चाहिये। रेशमी कपड़ा प्रशस्त होता है। उसका अभाव होने पर साधारण कपड़ा पहनना चाहिए। प्रतिदिन प्रातःकाल, दो पहर और सांझ के पहले ही स्नान करना उचित है। दिनभर में एक बार से अधिक तैल लगाकर स्नान न कर के गर्म जल से हाथ-पैर तथा शरीर साफ करना चाहिए। उसके बाद एक पहर यानी तीन तीन घण्टे पीछे अंगोछे से सारे शरीर को पोंछकर फिर शुद्ध शुष्क वस्त्र द्वारा शरीर पोंछ लेना चाहिए। बारह बजे, तीन बजे, छः बजे और रात में नौ बजे के समय इसी प्रकार प्रतिदिन शरीर साफ करना विशेष लाभप्रद होता है।

होम विधि

स्नान करने से पहले ही होम के लिए १०८ विल्वपत्र तोड़ रखना चाहिए। अपने गांव से कम कम आध कोस की दूरी पर से बेल की पत्ती लाना चाहिए; परन्तु किसी प्रकार से यदि कोई रोकटोक हो तो अपने गांव से या अपने मुकाम से ही तोड़ लेना चाहिए। इन बेल-पत्तियों को अपने हाथ से ही संग्रह करना उचित है, उन्हें किसी दूसरे को न छूने देना चाहिए। बेल पत्तियाँ शुद्ध होनी चाहिए; अर्थात् उन्हें साफ कर लेना चाहिए, जिससे कोई कीड़ा न रहने पावे।

होम के लिये एक घर अलग होना चाहिये, जिसमें और कोई भी न आने-जाने पावे, ऐसा होना ही सब से अच्छा है। किन्तु रात्रि के समय उसी कमरे में सोना भी चाहिये। होम के लिये लकड़ी (कैसी भी हो), एक सौ आठ बेल-पत्ती, गाय का घी (न मिलने पर भैंसका), धूप, बत्ती, चन्दन (श्वेत या रक्त) तथा कुशासन (अथवा और किसी प्रकार का आसन) होना अवश्यक है।

स्नान करने के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर शरीर में चन्दन का लेप करे एवं बेल-पत्तियों में घी लगावे। इस के बाद शयनागार में घी का दीपक और धूप-बत्ती जलाकर काष्ठ को चौखटे के रूप में सजाकर उसे भी सुलगा दे। इसके बाद कुशासन या किसी अन्य शुद्ध आसनपर बैठ कर एकाग्र चित्त से आँखें मूँदे हुए इस प्रकार ध्यान करे कि :—

'इस घर से प्रेत पिशाच, यक्ष तथा राक्षस इत्यादि अनिष्ट के कारणरूप देव-योनि सब भाग चुके हैं; इस समय हमारी यह छोटी-सी झोपड़ी महात्माओं तथा देवताओं से परिपूर्ण हो गई है। यहाँ पर इन्द्र आदि देवता आकर उपस्थित हो गये हैं। हमारी टूटी हुई कुटी में ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा शिवलोक से भी

देवगण आकर प्रकट हुए हैं। अहा! आज मेरे लिए कितने सौभाग्य का दिन है!'

ऐसा सोचते तुम देखोगे कि शरीर रोमाञ्चित, हृदय पुलकित एवं भक्तिभाव से कण्ठ प्रायः रुद्ध हो गया है। * तब उपस्थित देवताओं से आन्तरिक प्रार्थना करे एवं मन्त्र का जप करते हुए बेलपत्र को एक एक कर के अग्नि में डाल दे। † जब बेलपत्तियाँ समाप्त हो जायँ, तब देवताओं से पुनः प्रार्थना करके हवन समाप्त करे। जिस आसन पर बैठ कर होम किया जाय, उसे यत्नपूर्वक उठाकर अलग रखना चाहिये, जिससे कि दूसरा कोई उसे छू न सके। यदि दूसरा कोई व्यक्ति उस आसन को छू दे तो, तत्काल उसे फेंक कर नया आसन ग्रहण करना चाहिए।

दूसरे दिन फिर ब्राह्ममुहूर्त्त में (सूर्योदय से डेढ़ घण्टे पहले) होम का भस्म इत्यादि अलग हटाकर कमरे को अच्छी तरह से साफ करे। कमरे के किसी भी स्थान पर दुर्गन्धि एवं अपवित्र वस्तु या कूड़ा करकट न रहने पावे। होम की सामग्रियों के संग्रह करने तथा होम के कमरे को शुद्ध करने का भार अपने ही ऊपर रखना उचित है—दूसरों को ऐसे कार्य्य का भार कभी न सौंपना चाहिये। होम के घर में खड़ाऊँ का उपयोग करना अच्छा है; क्योंकि नंगे पैर कहीं भी

---

* यदि इस प्रकार शरीर रोमाञ्चित, और हृदय में आनन्द पैदा न हो एवं भक्ति का भाव उदय न हो तो समझ लेना चाहिए कि होम के घर में कोई अपवित्र वस्तु है, अथवा तुम्हारे शौच के सम्बन्ध में कोई प्रबल दोष हुआ है; ऐसा होने पर उसके प्रतिकार के लिये उसी वक्त विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

† द्विजगण वैदिक-नियम से त्रिकाल सन्ध्याह्निक और होम आदि करें एवं द्विजेतरगण स्व स्व कुल-देवता के मन्त्र से (दीक्षा न होने पर देवता के नाम से) होम करें।

न जाना चाहिये। और कहीं जाना ही हो तो छाता एवं चमड़े के जूते का उपयोग करना आवश्यक है। अतः जिससे शरीर को व्यर्थ ही तकलीफ उठानी पड़े ऐसा काम कभी न करना चाहिए। दूसरे का पहना हुआ कपड़ा, अंगोछा, खड़ाऊँ तथा जूता इत्यादि अपने काम में न लाना चाहिये।

भोजन-विधि।

भोजन की शुद्धि ब्रह्मचर्य्य के साधन करने का सब से बढ़ कर अवलम्बन है। शरीर तथा मन के लिए जो कुछ ग्रहण किया जाता है, उसी का नाम भोजन है। शरीर के लिये भोज्यवस्तु और मन के लिये विषय (अर्थात इन्द्रियों के ग्रहण करने के योग्य वस्तु-सम्बन्धी चिन्ता,—जैसे रूप, रस, गन्ध शब्द तथा स्पर्श इत्यादि) ग्रहण किये जाते हैं। अतएव आहार-शुद्धि कहने से सात्विक भोजन तथा सात्विक विचार ही समझना चाहिये। ये दोनों प्रकार के आहार परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं ; अर्थात् सात्विक भोजन न करने से न तो मनमें सात्विक चिंता (विचार) ही आ सकती है और न सात्त्विक विचार के बिना सात्त्विक भोजन में ही रुचि उत्पन्न हो सकती है। सात्त्विक आहार ही संसार के सारे दुःखों को दूर करने का एक मात्र उपाय है। इसलिये आहार को शुद्ध करने का विशेष प्रयत्न होना आवश्यक है लोभ तथा दुश्चिन्ता का परित्याग किये बिना आहार की शुद्धि नहीं हो सकती। शरीर को पुष्ट करने एवं बल तथा आरोग्यता

प्राप्त करने के ही लिये भोजन करना आवश्यक है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, की मुहूर्त्त भर के लिये जिह्वा की तृप्ति साधन करना भोजन का उद्देश्य नहीं है। इस बात को स्मरण रखने से ही आसानी के साथ लोभ का त्याग किया जा सकता है।

सात्विक-भोजन भी चित को सावधान कर के मौनावलम्बन-पूर्वक भगवान को अर्पण करने के वाद प्रसाद के रूप में ग्रहण करना चाहिये। भोजन की वस्तुओं द्वारा पाकस्थली का आधा एवं विशुद्ध पानीय (जल आदि) द्वारा उसका पादांश (चौथाई भाग) पूर्ण करना चाहिये एवं पादांश भाग को वायु के घूमने के लिये खाली रखना चाहिये। तात्पर्य्य यह कि, इच्छा रहने पर ही यानी भूख रहने पर ही भोजन समाप्त कर देना चाहिये। अमावस्या तक पूर्णिमा की रात्रि को भोजन करना उचित नहीं है। एकादशी को अन्न का भोजन न करके एक वार फलाहार या दूध पीना ही उचित है।

जिस वस्तु के भोजन से आयु (उम्र), सत्त्वगुण, बल, आरोग्यता, सुख तथा प्रीति की वृद्धि होती है, केवल उसी वस्तुका भोजन सात्विक है, जैसे—दूध घी, शक्कर इत्यादि। बहुत कड़वा, बहुत खट्टा; बहुत गर्म्म बहुत रूखा बहुत नमकीन, एवं बहुत ठंडा, रसशून्य (सूखा), दुर्गन्धित, पूर्वदिनका पका (बासी) सड़ा हुआ, जूठा, एवं अपवित्र भोजन ही तामसी है। इसी प्रकार मछली, मांस, अंडा मादक वस्तु, पियाज तथा लहसुन इत्यादि राजसिक भोजन हैं।

सात्त्विक भोजन करना ही अच्छा है ; परन्तु अधिक मात्रा में सात्त्विक भोजन करना भी उचित नहीं है। क्योंकि क्षुधा की निवृत्ति के लिये जितने आहार की आवश्यकता होती है, उससे अधिक भोजन करने से बहुत हानि होती

है। सुतरां, इसी दशा में सात्त्विक भोजन भी राजसिक तथा तामसिक की ही भाँति हानिकारक हो जाता है। इसलिये मिताहार (नपातुला ही निश्चित) भोजन करना अच्छा है एवं मिताहार के लिये मनुष्य को सदा सावधान रहना चाहिए। इसी से "अकाङ्क्षा (इच्छा) रहने पर यानी थोड़ी-सी भूख रहने पर ही भोजन समाप्त कर देना अच्छा समझा जाता है।" अर्थात् यदि और भी कुछ खा लिया तो पेटका चौथाई भाग भी भर जायगा एवं पेट पूर्ण हो जायगा—अतएव और अधिक भोजन नहीं करूंगा, ऐसा सोच-विचार कर के ही भोजन समाप्त कर देना चाहिये।

मोहान्ध मानवगण भोजन के उद्देश्य को भूल कर रसना की क्षणिक तृप्ति के लिये बहुत-सी चीजों का स्वाद लेने को ललचाया करते हैं; इसीसे संसार में मनुष्य के लिये अखाद्य (न खाने योग्य) प्रायः कोई भी वस्तु नहीं रह गई है एवं इसी कारण जगत में असंख्य बीमारियों का भी प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) देखा जाता है। जो हो तामसिक और राजसिक भोजन कदापि न करना चाहिये और सात्त्विक भोजन में से भी कुछ चीजों को अपनी रुचि के अनुसार चुन लेना चाहिये। जहाँ तक हो सके विशेष वस्तुओं का अभाव पैदा न कर उन्हीं वस्तुओं के भोजन से अपना निर्वाह कर लेना चाहिये।

प्रातःकाल नित्यक्रिया से निवृत्त होने के बाद भींगा हुआ चना तथा छिले हुए अदरक का टुकड़ा नमक मिला कर खाना चाहिये एवं पीछे से दो चार बताशे अथवा थोड़ी सी चीनी या मिश्री खा कर जल-पान करना चाहिये। इनके अतिरिक्त और किसी प्रकार की चीजों से जल-पान नहीं करना चाहिये। इस भारतवर्ष में लगभग पाव भर चावल या आटे (रोटी का) भोजन करने से ही

दो-पहर का भोजन समाप्त हो जाता है। केवल मात्र घी एवं दूध के द्वारा ही मनुष्य इस एक पाव अन्न को उदरस्थ (पेट डालना) कर सकता है ; घी के साथ थोड़ी-सी चीनो या मिश्री किम्बा चार-छ बताशे मिला देने से भी काम चल सकता है। परन्तु प्रतिदिन घी और दूध के साथ बहुत दिनों तक भोजन करने से चिराभ्यास के कारण भोजन में अरुचि उत्पन्न हो जाती है ; इसलिये दूध घी के अतिरिक्त भी दूसरी चीजों की आवश्यकता हो सकती है। अतएव अन्न के साथ आलू-परवल या आलू बैंगुन किम्बा पालक, मैथी, बथुआ इत्यादि का साग सिद्ध (तैयार) करके उसके साथ घी और नमक मिलाकर भोजन कर सकते हैं। मूंग, मटर, अरहर, उर्द या चने की दाल भी पककर अन्न के साथ भोजन में शामिल की जा सकती है। शरत् ऋतु में परवल की पत्ती की साग (बगैर मिर्च के सिर्फ़ अदरक, नमक और घी से पकाकर) एवं वसन्त ऋतु में नीम और बैंगुन का साग (बिना मिर्च के) भोजन करना अच्छा है, इस से बहुत-सी बीमारियां पैदा ही नहीं होने पाती हैं। परन्तु साग पकाने में कभी भी तैल का उपयोग न करना चाहिये, घी को ही काम में लाना उचित है।

भात, रोटी, दाल (मूंग, अरहर, मटर, चना या उर्द की) तरकारी, शाक, आलू, परवल, बैंगुन, परवल की पत्ती, नीम की पत्ती इत्यादि) नीबू, नमक, चीनी, बताशा मिश्री, दूध, घी इत्यादि में से ही अपनी रुचि के अनुसार भोजन की वस्तु चुन लेना चाहिये। जहाँ तक हो सके विशेष अभाव- ग्रस्त न होने पर इन सबों का उलङ्घन न करना चाहिये। परन्तु राजसिक और तामसिक भोजन तो कदापि न करना चाहिये। भोजन के सम्बन्ध में जहाँ तक हो सके जितनी चीजों का त्याग करोगे, उतना ही मंगल होता जायगा। देश के अभाग्य-वश आजकल घी-दूध का अभाव हो रहा है और दिन प्रति दिन यह सर्वसाधारण के

लिये दुर्लभ होते जा रहे हैं। सुतरां ऐसी दशा में पारिवारिक अवस्था अच्छी न होने पर भी यह न समझना चाहिये कि मैं गरीब आदमी होने से दूध-घी नहीं खा सकता। ऐसा सोचना किसी भी दशा में अच्छा नहीं है ; क्योंकि राजसिक और तामसिक सारे भोजन छोड़ देने से तुम्हारी जो कुछ बचत हो जायगी उससे तुम बड़ी आसानी के साथ दूध-घी भोजन कर सकते हो। सात्त्विक भोजन में घी और दूध ही सब से अच्छे हैं। अतएव दूध और नवनीत (मक्खन) आदि भोजन करने का उपाय अवश्य करना चाहिये। दही, मट्ठा, छेना इत्यादि न खाना चाहिये।

अभ्यास के अनुसार सिद्ध चावल या अरवा चावल खाना चाहिये। इस सम्बन्ध में अभ्यास बदलने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् यदि तुम्हारा सिद्ध चावल के (अन्न) भोजन का अभ्यास रहे तो, सिद्ध चावल का अन्न ही भोजन करो, अरवा चावल के अन्न का भोजन करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उससे शरीर अस्वस्थ होने की सम्भावना रहती है। परन्तु अरवा चावल के अन्न का भोजन करने से यदि कब्जियत आदि कारण-वश शरीर में कोई ग्लानि (क्लेश) पैदा न हो तो अरवा चावल का अन्न ही भोजन करना अधिक अच्छा है। गाय का ही घी उत्तम होता है ; परन्तु यदि वह न मिल सके तो भैंस के घी का उपयोग किया जा सकता है। खाने में पुराना चावल अच्छा होता है, परन्तु यदि उसमें कीड़े आदि पड़ गये हों तो उसका स्वाद खराब हो गया हो अथवा खाने में अम्ल रस (खट्टापन) मालूम हो तो उसे व्यवहार में नहीं लाना चाहिए एवं नये चावल का उपयोग करना चाहिए। तात्पर्य्य यह कि अन्न का स्वादिष्ट होना आवश्यक है। इससे साबूदाना, अरारुट आदि अरुचिकर चीजों हल्की होने पर भी भोजन न करना चाहिये। वल्कि जो

वस्तु खाने में रुचिकर हो उन्हींका भोजन करना उचित है। साथ ही इस महावाक्य को हमेशा याद रखना चाहिये कि "आकांक्षा" (इच्छा) रहते ही यानी थोड़ी-सी भूख रहने पर ही भोजन समाप्त कर देना चाहिये।

एकादशी के दिन चावल न खाकर सूजी या आंटे की रोटी ही खाना चाहिये। यदि असुविधा न हो तो षष्ठी, एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा इत्यादि तिथि को अन्न के बदले रोटी या फलाहार करना ही ज्यादा अच्छा है। ऐसा करने से शरीर का विशेष उपकार हो सकता है, परन्तु न करने से कोई ऐसा हानि भी नहीं होती।

बहती हुई नदी के स्वच्छ जल का पान करना उचित है। अगर न मिल सके तो प्रशस्त तालाब या कूँए का ही जब पीना चाहिये। लेकिन पीने के पहले जल को अच्छी तरह से उबाल कर ठंढा करने के बाद छान कर उसका उपयोग किया जा सकता है। अथवा विद्यालय की पाठ्य (पढ़ाई की) पुस्तक में अविशुद्ध जल जिस ढंग से मिट्टी के चार घड़ों द्वारा कोयला और रेत की सहायता से विशुद्ध कर लेने की विधि है, उसी के अनुसार जल विशुद्ध कर लेना उचित है। लेकिन उस विधि से शुद्ध करने के पहले भी एकबार उसे उबालना अवश्य चाहिये। यदि पीने का जल दूषित मालूम पड़े तो गर्म्म दूध या कच्चे (हरे नारियल का पानी) पीकर ही अपनी प्यास बुझा लेनी चाहिये।

भोजन करने के बाद हाथ-मुंह धो कर मुख शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु पान, सुपारी कत्था चूना आदि कुछ भी मुँह में न डालना चाहिये। वरन् धनिया, लौंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, दालचीनी, सौंफ इत्यादि को इकट्ठी करके किसी डिब्बे या शीशी में रख छोड़ो और भोजन करने के बाद जरा सा यही मसाला खा लो। भोजन के बाद मुख-शुद्धि के बिना

मुंह से दुर्गन्धि निकलने की सम्भावना रहती है। यह मुख शुद्धि का मशाला पाचन की शक्ति भी बढ़ाता है और मुँह की दुर्गन्ध भी नष्ट करता है। हरें का उपयोग करना सब से बढ़ कर है।

सन्ध्या के पहले अर्थात् चार पाँच बजे अगर भूख मालूम पड़े तो जलपान करना आवश्यक होता है। इस समय केवल फलमूल खाना ही अच्छा है; जैसे—नारियल, बेल, आम, केला, अमरूद, जामुन, पकी हुई लीची, ऊख, पपीता, ठंढा आलू, (चीना आलू) एवं दूध, मक्खन और शक्कर इत्यादि में से कोई भी वस्तु जलपान के लिए उपयुक्त हो सकती है। इनके अतिरिक्त कोई चीज उस समय न खानी चाहिये। तरबूज़, खीरा, कटहल, फूल बेर इत्यादि इत्यादि फलों को न खाना ही अच्छा है एवं दही, तक (मट्ठा), छेना फटे दूध की मिठाई, सन्देश, रसगुल्ला पूड़ो, कचौड़ी, मिठाई इत्यादि खाना अच्छा नहीं है। लाही, परमल, चावल तथा भुना हुआ चना आदि खून सुखानेवाले वस्तुओं का खाना भी हानीकारक है। नारियल की गिरी चीनी मिला कर खानी चाहिये। केवल मात्र नारियल के द्वारा ही सन्ध्या समय का जलपान समाप्त किया जा सकता है। इसके अभाव में ऊपर लिखे हुए फल खाये जा सकते हैं।

रात्रि को आठ, नौ बजे भूख के बिना भोजन करने की आवश्यकता पड़ती है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भूख के बिना भोजन करना हानिकारक होता है। अतएव रात्रि में दूध रोटी का थोड़ी-सी चीनी मिलाकर भोजन करना चाहिये; इसके अतिरिक्त और चीजों का भोजन करना हानिकारक होता है। यदि दूध बिलकुल न मिल सके तो दो-पहर के भोजन में से कोई भी सामग्री खाई जा सकती है; परन्तु रात्रि के समय आधा ही पेट खाना

अच्छा है ; यानी भूख रहते ही भोजन समाप्त कर देना चाहिये—रात्रि के समय कदापि परितृप्ति के साथ भोजन न करना चाहिये। एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा—इन तीन तिथियों में तो रात्रि के समय कुछ भी भोजन न करना चाहिये। सन्ध्या के समय जलपान करके ही दिन का भोजन समाप्त कर लेना चाहिये।

भोजन की सब सामग्री लेकर अपने हाथ से ही भोजन बनाकर खाना अच्छा है। परन्तु आजकल यह नियम सब से नहीं निभ सकता! जो हो, अपने हाथों से भोजन पकाना सुसाध्य न होने पर भी अपवित्र वस्तुओं का भोजन कदापि न करना चाहिये। शुद्धाचार-सम्पन्न (शुद्ध आचरण वाले) एवं अपने गुरुजन (पूजनीय) या सम्बन्धियों के हाथ का भोजन ग्रहण किया जा सकता है। होटल में भोजन करना तो बहुत ही बुरा है। कहीं यदि किसी सभा इत्यादि में जाना पड़े अथवा किसी के घर पर निमन्त्रण-रक्षा करने के लिये जाना पड़े तो वहाँ भी भोजन न करना चाहिये। भोजन की बात तो दूर रही, भीड़-भाड़ में जाना तक उचित नहीं है। परन्तु यदि किसी कार्य्यवश जाना ही पड़े तो वहाँ किसी भी चीज का भोजन न करना चाहिये। मदिरा, गांजा, अफीम, भांग, तम्बाकू, सिगरेट, चाय तथा काफी इत्यादि मादक वस्तुओं का सेवन कदापि न करना चाहिये।

कृत्य-चिन्ता ।

भोजन करने के बाद थोड़े समय तक विश्राम कर संसार के आवश्यकीय काम-काज में हाथ लगाना चाहिये ।

सांसारिक काम चलाने के लिये दूसरे लोगों से भी मिलने-जुलने की आवश्यकता अवश्य होती है, परन्तु जहाँ तक हो सके यह मिलना-जुलना कम करना चाहिये एवं इस विषय में नीचे लिखी हुई विधियों का स्मरण रखना चाहिये । जैसे :—

(१) किसी के हृदय को किसी प्रकार का कष्ट न देना चाहिये ।

(२) झूठ न बोलना चाहिये ।

(३) जहाँ तक हो सके बात-चीत कम करनी चाहिये, यानी मौनी होना चाहिये । परन्तु बात-चीत न करने पर भी सदा के लिये सहास्य (प्रसन्न) भाव की रक्षा करनी चाहिये ।

(४) दूसरे की चीजों का अपहरण न करना चाहिये ।

(५) मनुष्य को अपनी दशा पर सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये । मन को सन्तुष्ट करने के लिये—

[क] सब लोगों के कल्याण के निमित्त परम-मंगलमय परमपिता से प्रार्थना करनी चाहिये तथा उसका ध्यान रखना चाहिए संसार के सभी लोगों को आत्मीय समझना चाहिये । दूसरे की उन्नति और सुख देखकर प्रसन्न होना चाहिये ।

[ख] किसी को भी दुखी देखकर उस पर दया करनी चाहिये ।

[ग] किसी को भी कोई शुभ काम करते देखकर प्रसन्न होना चाहिये ।

[घ] किसी को कोई पाप-कर्म्म करते देखकर उसकी उपेक्षा करो अर्थात्

देखकर भी न देखो, सुन कर भी न सुनो और उसके सम्बन्ध में जरा भी सोच विचार न करो ।

(६) अपनी मृत्यु की बात स्मरण करके मनुष्य को सदा ही धैर्य्य और सहिष्णुता का अवलम्बन करना चाहिये । अगर कोई व्यक्ति हमारा अपकार करे तो उससे बदला लेने का प्रयत्न करना अच्छा नहीं है ।

(७) देवता लोग सदा ही तुम्हारी रक्षा करने का उद्योग करते रहते हैं, कोई भी तुम्हारा अपकार नहीं कर सकता—अपने हृदय में इस बात का सदैव ही विश्वास रखना चाहिये । जो अभी तुम्हारा अपकार करता हुआ ज्ञात होता है, वही पीछे से तुम्हारा परम हित-चिंतक और इष्ट-साधक हो जायगा – इस बात पर सदा के लिये दृढ़ विश्वास रखना चाहिये । इसीलिए कदापि देवताओं की शरण त्याग कर शैतानों के वश में मत जाओ ; अर्थात् सहिष्णुता त्याग कर क्रोध के वशीभूत मत होओ ।

(८) अगर तुम किसी के नौकर हो तो अपने मालिक के काम को अपना काम समझ कर उसे पूरा करने का हृदय से प्रयत्न करो । जिन लोगों को धर्म्म-साधना करने की इच्छा हो वे चाहे किसी भी दशा में क्यों न हों, इस कार्य्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं । यह संसार अनित्य है, यहाँ चाहने योग्य वस्तु कुछ भी नहीं है ; सुतरां निष्काम और उदासीन भाव से ही अपने जड़ शरीर को यन्त्र की भाँति चलाते रहना चाहिये : बागवान जैसे अपने मालिक के लिए ही बाग के फल-फूल की रक्षा करता है एवं स्वयं थोड़े ही में सन्तुष्ट रहता है, उसी प्रकार तुम भी इस संसार-रूपी बगीचे में अपने को भगवान् के माली की भाँति समझ कर थोड़े ही में सन्तुष्ट रहो । सारांश, तुम्हें सांसारिक कार्य्यों में काम, क्रोध लोभ, मोह, मद और मात्सर्य्य इत्यादि छः शत्रुओं का दमन करना चाहिये । सदा

के लिए अपने मन की कुवृत्तियों को दूर करने के लिये दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये। इन सब कुवृत्तियों के अधीन होने पर बडे बड़े देवता लोग भी तुम्हें परित्याग करेंगे (छोड़ देंगे) एवं शैतान यानी भूत प्रेत, पिशाच आदि निकृष्ट योनिवाले तुम्हें वशीभूत करके नरक की यन्त्रणा भुगावेंगे—इस बात को अच्छी तरह स्मरण रखना।

———

सदाचार

अपवित्र वस्तुओं को देखने और अश्लील शब्दों के सुनने से चित्त की शुद्धि में बड़ा विघ्न पड़ता है। इसके अलावा अपवित्र वस्तुओं के स्पर्श करने, सूंघने तथा आस्वादन करने से भी चित्त की शुद्धि में हानि पहुँचती है। अतएव जहाँ तक हो सके, नीचे लिखे नियमों के पालन करने का प्रयत्न करना चाहिये।

भक्ति-भाजन गुरुजनों के अतिरिक्त और किसी के मुंह की ओर न देखना चाहिए। अपनी दृष्टि को या तो सर्वदा (हमेशा) के लिये नीची रखना चाहिये या किसी पवित्र वस्तु को देखना चाहिए। धातुओं की बनी हुई चीजें, पत्ते, पुष्प, जल, गाय, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, देवताओं की मूर्ति तथा उनके चित्र, महात्माओं के चित्र इत्यादि देखना चाहिये। बात-चीत करते समय भी गुरुजनों के अतिरिक्त और किसी की आँखों की ओर देखना अच्छा नहीं है।

किसो के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये। सारांश यह कि संसर्ग या संग के दोषों को जहाँ तक हो सके, छोड़ देना चाहिये। जैसे सुगंधित पुष्पों से सदा सुगन्धित तथा निर्जीव शरीर से सर्वदा के लिये दुर्गन्ध

निकला करती है, ठीक उसी प्रकार साधु-महात्मा के अतिरिक्त और लोगों के शरीर से अपवित्र परमाणु निकला करते हैं। सुतरां इस बात को स्मरण रख कर, जहाँ तक हो सके ऐसे लोगों का संसर्ग छोड़ देने की कोशिश करनी चाहिये।

अत्यन्त आवश्यकता न होने पर घर के भीतर न रहना चाहिये। जहाँ पवित्र वायु चल रही हो, ऐसे खुले मैदान में ही अधिकांश समय व्यतीत करने की कोशिश करनी चाहिये। खुले हुए ऊँचे स्थान, छत, पहाड़, इत्यादि वन, उपवन, बाग, बगीचा, मैदान तथा किसी अच्छी चौड़ी नदी, झरना य तालाब के किनारे बैठ कर भगवान् का ध्यान करना चाहिये।

वाक्य तथा श्रवण-शक्ति के संयम करने का अभ्यास करना चाहिये। न तो पाप-सम्बन्धी बातें सुननी चाहिये; न पाप को हृदय में स्थान देना चाहिये और न पापी की बातों का प्रचार करना चाहिये। किसी की निन्दा अथवा बुरे कर्म्मों को समालोचना न करनी चाहिये। अत्यन्त आवश्यक न होने पर किसी के साथ बात-चीत करना अच्छा नहीं है। अगर कोई किसी प्रकार का प्रश्न करे तो उत्तर देने के पहले यह सोच लेना चाहिये कि हमें क्या करना है एवं कौन-कौन सी बातें कहने की आवश्यकता है। हमें न तो अधिक बातें करनी चाहिये और न व्यर्थ बातों की ओर ध्यान ही देना चाहिये। तात्पर्य्य यह कि जहाँ तक हो सके, वाक्संयम चित्त को शुद्ध करने का अच्छा उपाय है। लेकिन, इसके लिये मुंह में कभी कड़वा वचन न आने देना चाहिये और अपने मुख-मण्डल को सर्वदा सरस तथा हास्यमय रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

शाम होने के पहले ही घर-गृहस्थी का काम-काज समाप्त कर देवें। तात्पर्य्य यह कि दिवावसान के साथ ही साथ तुम्हारे घरेलू काम-काज समाप्त हो जायँ।

सायं कृत्य

दिन के काम-काज समाप्त होने पर थोड़े समय तक आत्मचिन्तन और नित्या-नित्य विचार करें।

"इस संसार में जन्म से आज तक न जाने मैंने कितने क्लेश भोगे हैं। मेरा सारा जीवन ही क्लेशमय है। जिसे हम सुख समझ बैठे हैं, वह भी वास्तविक सुख नहीं है ; केवल मात्र वह क्षण-भर के लिये दुःख की निवृत्ति है। भोजन करके हम सुख नहीं प्राप्त कर सकते, केवल कुछ ही देर के लिए क्षुधा-रूपी व्याधि से निवृत्ति लाभ करते हैं। फलतः औषधियों का सेवन करने में भी सुख नहीं है, केवल कुछ देर के लिये रोग को यंत्रणा से छुटकारा मिल जाता है। इसी प्रकार संसार के जितने भी सुख हैं, उनके द्वारा ये अनन्त क्लेश केवल क्षण भर के लिए निवृत हो सकते हैं।

"जन्म से मृत्यु मानों मुझे खींचती रहती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और मुझे यह मानना अवश्य ही पड़ेगा ; परन्तु फिर भी हम घोर माया के वश में होकर इस संसार को चिरस्थायी समझते हैं और अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में कभी भी विचार नहीं करते ; बल्कि मृत्यु की चिंता से हम सदैव ही भय-भीत रहते हैं। दिन पर दिन मेरी आयु क्षीण हो रही है ! मृत्यु के समय मुझे न जाने कितनी पीड़ा सहनी पड़ेगी।

देखो, यह दिन चला गया, सूर्यदेव ने अस्ताचल की राह ले ली। मुझे भी एकदिन मरना होगा, वैसे ही मुझे भी फिर जन्म लेना पड़ेगा। काल (समय) का तो अन्त नहीं है ; परन्तु क्या अनन्तकाल तक मैं अशेष क्लेश सह कर ही केवल मरता और पैदा होता रहूँगा ? यह अनन्त क्लेश-रूपी प्रवाह क्या कभी निवृत्त नहीं होगा ? क्या इस क्लेश से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं है ? क्या इस विषय पर सिर्फ मैं ही विचार कर रहा हूँ ?—नहीं, अनादि-काल से न

जाने कितने महात्माओं ने इस विषय पर विचार किया है। कितने ही महात्मा और महापुरुषों ने इस क्लेश के प्रवाह से छुटकारा पाने का मार्ग भी निर्धारित किया है। विशेषतः इस आर्य्यभूमि भारत में कई महात्मा आजन्म केवल मुक्ति का ही मार्ग ढूंढ़ते रह गये; तब फिर मैं तो अत्यंत क्षुद्र-बुद्धि एवं मूढ़ हूं, भला मैं और क्या सोचूँगा, क्या—विचारूंगा?—और कौन-सा नया मार्ग मैं आविष्कार करूंगा? सामने जब इतना अच्छा-प्रशस्त (लम्बा-चौड़ा) मुक्ति का मार्ग दिखाई पड़ रहा है; तब और नये मुक्ति-मार्ग की आवश्यकता क्या है? जिस मार्ग को मैं देख रहा हूं, उसी से चलने पर ही मुक्ति लाभ की जा सकती है। परन्तु मैं मोह-वश उस मार्ग पर नहीं चल सकता हूँ।

"जिस संसार को मैं अनित्य और क्लेशमय समझ रहा हूं,—अनुभव कर रहा हूँ, उसी संसार में तो मेरी प्रबल आसक्ति है मैं जालमें फँसे हुए पक्षी की भाँति या पाश-बद्ध पशु की भाँति सदा ही संसार-रूपी चक्र में भ्रमण कर रहा हूँ एवं सदा के लिये ही क्लेश भोग रहा हूँ। इस माया-रूपी पाश (जाल) को काटने का क्या उपाय है? अगर मैं इस पाश को न काट सका तो मुक्ति के मार्ग का अवलम्बन कैसे कर सकूंगा? पाश-बद्ध पशु अपनी इच्छा के अनुसार कहीं नहीं जा सकता है; मैं भी अपनी इच्छा के अनुसार कहीं नहीं जा सकता हूं। मुझे भी स्वाधीनता नहीं है। वह किस उपाय से मुझे मिलेगी? कौन मुझे इस जाल से मुक्त करेगा? मालिक यदि चाहे तो पशु को बन्धन से मुक्त कर सकता है। मेरा भी स्वामी (मालिक) अवश्य है; अगर मैं उन्हीं प्रभु की शरण में जाऊं तो वे अवश्य ही मेरा बन्धन काट देंगे। अतएव मैं उन्हीं त्रिलोकीनाथ-रूपी सद्गुरु की उपासना करूंगा—उन्हीं के श्रीश्रीचरण-कमलों में ही प्रार्थना करूंगा।"

इस प्रकार चिन्तन-ध्यान करने के बाद दरवाजा बन्द करके अपनी यज्ञशाला में शुद्ध आसन पर बैठ दीपक के प्रकाश में कुल-देवता की मूर्ति या चित्र का चित्त को एकाग्र करके कुछ समय तक दर्शन करते रहो।* इसके बाद आँख मूंद कर हृदय के नेत्रों से हूबहू उसी मूर्ति या चित्र को देखते रहो। आँख मूंदने पर हृदय के नेत्रों से यदि उस चित्र को सुस्पष्टरूप से न देख सको तो आँखें खोलकर फिर कुछ देरतक देखते रहो। इसके बाद आँखें मूंद कर फिर हृदय के नेत्रों से उसी चित्र को देखो और उसीको त्रिलोकीनाथ सद्गुरु समझकर नीचे लिखी हुई रीति से प्रार्थना करो :—

"हे अनन्त देव! मेरा क्षुद्र हृदय तुम्हारा विराट रूप धारण करने में असमर्थ है, इसीसे मैंने तुम्हारी इस मूर्त्ति की कल्पना की है। हे ब्रह्मन्! हे मंगलमय देव! तुम इसी मूर्त्ति में प्रकट होकर मुझ त्रिताप-क्लिष्ट को बन्धन से मुक्त करो। हे सृष्टि-स्थिति तथा प्रलय के कर्त्ता प्रणवरूपी भगवान्! हे सत्यस्वरूप गुरुदेव! तुम मेरे मोह-रूपी पाश (जाल) को काट दो!"

इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद आँखों को मूँदे हुए ही हृदय-कमलपर हृदय के नेत्रों से इष्ट देवता की मूर्ति को देख कर इष्ट मन्त्र का जप शुरू करना चाहिये।

एक आसन पर बैठ कर कम से कम एक हजार आठ बार मन्त्र

---

* तुम्हारे पितृ-पितामह आदि ऊर्द्धतन पुरुषगण जिस देवता के उपासक थे, उसी देवता को अपने कुल के देवता या इष्ट-देवता समझना चाहिये। दूसरे जो देवता तुम्हारे हृदय के आनन्द-दाता हों उन्हीं (देवता) को तुम अपना इष्ट-देव जानो। गुरुकुल में उत्पन्न भक्ति-भाजन सज्जन व्यक्ति से मन्त्र ग्रहण किया जा सकता है। उसका अभाव होने पर किसी भी भक्ति-भाजन धार्म्मिक सज्जन व्यक्ति से भी मन्त्र ग्रहण किया जा सकता है।

का जप करना चाहिये। जप करते समय मानसिक-नेत्र से इष्ट देव की मूर्ति का दर्शन भी करते रहना चाहिये और मंत्र की संख्या भी रखना चाहिये। —इसके लिये एक हजार आठ गुरियों की माला की आवश्यकता पड़ती है। रुद्राक्ष या तुलसी की माला अच्छी होती है। परन्तु उसके अभाव में किसी भी प्रकार की माला ग्रहण की जा सकती है। जप करते समय दाँतों को दबा कर रखना चाहिये; ओठों को मिलाकर जिह्वा को भी स्थिर रखना आवश्यक है; केवल जिह्वामूल और कण्ठनाली की ही सहायता से मन्त्र का जप करना चाहिये। होम के समय भी इसी प्रकार जप करना उचित है।

दिन के समय सांसारिक काम-काज से छुट्टी मिलने पर या सुविधानुसार कभी-कभी जप आरम्भ कर देना चाहिये। परन्तु उस समय जप-संख्या रखने की आवश्यकता नहीं है। खुले हुए स्थान पर यानी किसी के देखते हुए कभी माला न जपना चाहिये। परन्तु चाहे जिस समय जो कार्य्य करो उस समय उसमें ही विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। अतएव जप करने से यदि घर-गृहस्थी के काम-काज में बाधा पड़ने का भय या नुकसान हो तो जप न करना ही अच्छा है। किन्तु सुविधा होते ही जप अवश्य ही करना चाहिये। परन्तु इस बात को बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि रात्रि में जप करते समय घर-गृहस्थी के किसी भी काम-काज की ओर ध्यान न देना ही उचित है।

एक हजार आठ बार जप समाप्त करके रात्रि का भोजन ग्रहण करो। इसके पश्चात् कुछ देर विश्राम करो, उस समय भी सारी चिन्ताओं को छोड़कर मन को निश्चिन्त रखना चाहिये। मन यदि कुछ देर तक निश्चिन्त रहे तो निद्रा का वेग आ पहुंचता है। उस समय स्वच्छ शय्यापर अकेले शयन

करना चाहिये। यदि सोने के कमरे में स्त्री या और लोगों के साथ सोना बहुत ही आवश्यक हो तो भी अलग अलग शय्यापर सोये, जिससे कि दूसरे के शरीर का स्पर्श न हो सके।

जब तक चित्त की सारी वृत्तियाँ रुक न जायँ, तब तक स्त्री का सहवास न करना चाहिए। यह बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है कि स्त्री-सहवास तो दूर स्त्री से बात-चीत तक नहीं करनी चाहिये और न उसका मुख ही देखना चाहिये। क्योंकि ऐसा करते ही रक्त से वीर्य्य पृथक होकर गिर जायगा और ब्रह्मचर्य्य में विघ्न पड़ जायगा। शय्यापर लेटते ही यदि निद्रा न आ जाय तो उस समय भी जप करते रहना चाहिये। ऐसे समय पर जप-संख्या रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जप करते ही करते सो जाना चाहिए।

———

ब्रह्मचर्य्य-साधन

दूसरा अध्याय

साधन-प्रणाली

भोजन शुद्धि

यह पहले कहा जा चुका है कि ब्रह्मचर्य्य क्या है ?—शरीरस्थ (शरीर के) वीर्य्य को अविकृत (शुद्ध) और स्थिर रूप में धारण करने का ही नाम ब्रह्मचर्य्य है। कहने का मतलब यह कि शरीर, मन, कर्म्म और वचन से सर्वतोभावेन मैथुन की इच्छा का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य्य है। सब प्रकार की इच्छाएं ही मन की वृत्तियां हैं और मन के साथ शरीर एवं शरीर के साथ भोजन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन के सम्बन्ध में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जो मन और शरीर की उन्नति करनेवाला तथा उपकारी हो, वही भोजन उत्तम है। जिसके पेट में जाने से शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं होता और शरीर बलवान होता है, चित्त की प्रसन्नता तथा

धार्म्मिक प्रवृत्ति बढ़ती जाती है—शौर्य्य, वीर्य्य, दया, दाक्षिण्य, पराक्रम आदि बढ़ते हैं, वही भोजन करना उत्तम है। केवलमात्र इन्द्रिय को सन्तुष्ट करना ही भोजन का मुख्य उद्देश्य नहीं है। सारांश यह कि आहार के ही गुण के अनुसार मनुष्य के भी अच्छे-बुरे गुण होते हैं। अतएव भोजन के सम्बन्ध में विशेष सावधान रहना चाहिए। भोजन के सम्बन्ध में शास्त्र का कथन है :—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

छान्दोग्योपनिषद्

भोजन की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्व-शुद्धि होने पर निश्चय रूप से स्मृति लाभ होता है एवं स्मृति लाभ होने से मुक्ति बहुत ही सुलभ हो जाती है।

अतएव सभी तरह के यत्न और चेष्टा द्वारा आहार-शुद्धि के विषय में विशेष सावधानी रखना चाहिए। सत्त्वगुण ही सब का श्रेष्ठ लक्ष्य होना चाहिए; सुतरां रज और तमोगुण-विशिष्ट खाद्य-पदार्थ (भोजन की वस्तु) कदापि भोजन न करना चाहिये। इसीलिए हम ने सब से पहले भोजन और शारीरिक-संयत के विषय में ही विचार एवं आलोचना की है। पहले कहे हुए शुद्ध, सुमिष्ट (मीठे), सुरस, स्नेहयुक्त तथा कोमल भोज्य पदार्थ से पेट के तीन भागों को पूर्ण कर लेना चाहिए और शेष अंश को वायु के चलने फिरने के लिए खाली रखना चाहिए। कहना वृथा है कि जबतक शरीर मज़बूत तथा चित्त संयत न हो जाय, तबतक किसी को भी इस नियम के विरुद्ध कदापि न चलना चाहिए। धार्म्मिक-जीवन सिद्ध करना हो तो आजन्म इस नियम का पालन करना आवश्यक है। परन्तु जिन लोगों को कर्म्म-क्षेत्र में प्रवेश करना

हो, वे अपने धर्म्म के अनुसार भोजन की मात्रा घटा-बढ़ा कर कर उसमें फेरफार भी कर सकते हैं।

चित्त शुद्धि

मन का संयम ही असली ब्रह्मचर्य्य है, भोजन की शुद्धि से केवल मन की शुद्धि में ही सहायता मिलती है ; लेकिन मन की शुद्धि का सम्पादन करना ही प्रधान लक्ष्य है। जब तक मन शुद्ध न हो, कभी ब्रह्मचर्य्य की रक्षा नहीं की जा सकती। अगर मन को शुद्ध करने का प्रयत्न न किया जाय तो जीवन पर्य्यन्त सात्त्विक भोजन करने से भी कोई लाभ नहीं हो सकता। केवल चित्त की शुद्धि ही सब धर्म्मों का मूल है। जो लोग धर्म्म के यथार्थ तत्त्व को जानना चाहते हों, उन्हें इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। चित्त को शुद्ध रखने का अभ्यास करना ही धर्म्म का प्रधान साधन एवं मूल कारण है। मानव जब तक इन्द्रियों को अपने अधीन और रिपु (दुश्मन) का संयम नहीं कर सकता है, तब तक वह मनुष्यता के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता है। इन्द्रियों की चंचलता के प्रभाव से मन जब एकबार स्वेच्छाचारी हो जाता है, तब उसको अपने वश में करना मनुष्य की शक्ति से बाहर हो जाता है। जब तक मनुष्य की इन्द्रियाँ अपनी चंचल वृत्ति त्याग कर स्थिर-भाव से नहीं रहती है, तब तक ज्ञान का प्रकाश किसी तरह भी नहीं हो सकता। मानव-समाज इन्द्रियों के सुख में आसक्त होकर ही बिलकुल शिथिल हो जाता है। किन्तु जो लोग उन सुखों की परवाह नहीं करते,

केवल वे ही परम गति प्राप्त कर सकते हैं। इन्हीं सब महान तत्त्वों को जान कर आर्य्य-ऋषियों ने नियम-संयम को बहुत कठोर कर दिया है। जिन का चित्त शान्त तथा इन्द्रियाँ वश में न हों, वे समस्त शास्त्रों के विद्वान् होकर भी महा-मूर्ख हैं। महात्मा तुलसी दासजी का कथन है ;—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लौं मन में खान।
तब तक पण्डित मूरखो, तुलसी एक समान ॥

—जब तक मनुष्य के हृदय में काम, क्रोध, मद और लोभ की खान बनी रहती है, तब तक पण्डित और मूर्ख में कोई अन्तर नहीं है—सभी समान हैं।

अतएव ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करना हो तो सर्वतोभावेन चित्त को संयम करने का अभ्यास करना चाहिए। मैथुन की इच्छा न होने पर भी हिंसा, द्वेष तथा क्रोध इत्यादि शत्रु मन को उत्तेजित करेंगे और इस से बिना जाने ही तुम्हारे वीर्य्य के स्खलित हो जाने की सम्भावना है। इसी तरह दुश्चिन्ताओं में पड़कर निद्रा न आने से स्वप्न-दोष भी हो सकता है। अतएव जो लोग ब्रह्मचर्य्य का पालन करना चाहते हों, उन्हें चित्त को एकाग्र करके दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ रज और तमोगुणों के विरुद्ध सर्वदा सात्विक-वृत्ति का अनुशीलन (अभ्यास) करना चाहिये। सद्सत् यानी भला-बुरा सभी लोग जानते हैं ; अतः सदा के लिए दुष्प्रवृत्तियों के विरुद्ध सद्वृत्ति की परिचालना करना चाहिए।

पातञ्जल के कथनानुसार यम-नियम का पालन करने से ही चित्त शुद्ध हो सकेगा। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य तथा अपरिग्रह—यह पाँच यम हैं और शौच, सन्तोष, तप:, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान (ध्यान)—यह पाँच नियम हैं। इन दश वृत्तियों की साधना करने से चित्त अवश्य ही शुद्ध हो जायगा।

यम साधन

अहिंसा,—

मन, वचन और देह से सर्वभूत (किसी भी प्राणी) को कष्ट न पहुंचाने का नाम अहिंसा है। जब मन में हिंसा की छाया तक न देख पड़ेगी, तभी अहिंसा की साधना सिद्ध हुई समझनी चाहिए।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥

—पातञ्जल दर्शन साधन-पाद

जब हृदय में दृढ़-रूप से अहिंसा प्रतिष्ठित हो जायगी, तब दूसरा उस के प्रति अपने आप वैरभाव का परित्याग कर देगा। अर्थात् चित्त के हिंसा-शून्य होने पर साँप, बाघ, प्रभृति हिंस्र जानवर भी उसकी हिंसा नहीं करेंगे।

सत्य—

दूसरे के हित के लिये वचन और मन का जो यथार्थ भाव है, उसी को सत्य कहते हैं। सरल चित्त के अकपट वचन, जिसमें दुर्विचार का लेश भी न हो, वही सत्य भाषण कहलाता है। इसीलिये वाचा का संयम करना बहुत ही आवश्यक माना गया है! जो लोग अधिक बकवाद करते, हैं, वे बहुधा असत्य-वादी होते हैं। सुतरां सत्य की साधना (अभ्यास) करते समय बकवाद छोड़ देना चाहिये। आवश्यक बातों के अलावा निरर्थक एक शब्द भी न बोलना चाहिये। जब सत्य स्वाभाव-गत हो जायगा और मन में मिथ्या का लेश तक न रहेगा, तभी सत्य का साधन समाप्त हो सकेगा।

सत्य प्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम्।

पातञ्जल दर्शन, साधन पाद। ६६

क्षणिक ही हैं ; परन्तु यश, मान, सम्भ्रम तथा प्रतिष्ठा इत्यादि भी भला कितने दिन के लिए रहनेवाले हैं ? इस प्रकार इन विषयों की असारता और क्षणभङ्गुरता को भली-भाँति समझने पर ही सन्तोष की साधना सिद्ध होती है ।

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ।

पातञ्जल दर्शन, साधन-पाद । ४२

सन्तोष की सिद्धि होने पर अनुपम सुख प्राप्त होता है । वह सुख वर्णनातीत है, वह विषय-निरपेक्ष सुख है, अर्थात् बाहरी वस्तुओं से उस सुख का कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।

तपस्या,—

वेद की विधि के अनुसार कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतोपवास करने को तपस्या कहते हैं ।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।

पातञ्जल दर्शन, साधन-पाद । ४३

तपस्या के द्वारा शरीर और इन्द्रियों की अशुद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं । अर्थात् शरीर के शुद्ध हो जाने पर इच्छानुसार सूक्ष्म तथा स्थूल करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है एवं इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाने पर सूक्षम-दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्वाद-ग्रहण, स्पर्शन इत्यादि सूक्ष्म-विषयों के ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है ।

स्वाध्याय,—

प्रणव और सूक्त मन्त्रादि के अर्थ का चिन्तन करके जप एवं वेद और धर्म्मशास्त्र इत्यादि के भक्ति-पूर्वक अध्ययन करने का नाम स्वाध्याय है ।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।

पातञ्जल दर्शन, साधन-पाद । ४४

स्वाध्याय के द्वारा इष्ट-देवता का दर्शन प्राप्त होता है ।

ईश्वर-प्रणिधान,—

भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक ईश्वर में चित्त समर्पण करके उसकी पूजा-उपासना करने का नाम ईश्वर-प्रणिधान है ।

समाधिरीश्वरप्रणिधानात् ।

पातञ्जल दर्शन, साधन-पाद ।४५

ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा योग के सर्वोच्च-फल समाधि की सिद्धि लाभ होती है । ईश्वर-प्रणिधान द्वारा जितनी शीघ्रता से चित्त की एकाग्रता हो कर शुद्धि हो जाती है, उतनी और किसी प्रकार के कार्य्य से भी नहीं हो सकती । क्योंकि उनके चिन्तन से उनकी ही भास्कर-ज्योति हृदय में आकर सब मलिनता को दूर कर देती है ।

ये सब उपाय ही चित्त-शुद्धि के साधन हैं । पूर्ण मानव बनकर वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना हो तो सब देश तथा सब जाति के लोगों को ही इन यम-नियमों की साधना में सफलता प्राप्त करनी चाहिये । साधना का अर्थ है अनुशीलन करना यानी अभ्यास करना । इस बात पर हमेशा विचार रखना चाहिये कि कितना उपकार सद्वृत्ति से होता है और कितना असत् वृत्ति से । हमें दृढ़ प्रतिज्ञा करके बड़े उत्साह के साथ अपनी प्रत्येक दुष्प्रवृत्ति से लड़ना चाहिये । ऐसा होने से धीरे-धीरे दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाएँगी और स्वात्त्विक वृत्तियों का विकास होगा ।

हृदय में सत्य के प्रतिष्ठित हो जाने हो पर कोई कार्य्य न करके भी फल प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सत्य-प्रतिष्ठित व्यक्ति वाक्सिद्ध हो जाता है। केवल मात्र सत्य की ही रक्षा कर सकने पर सत्य-स्वरूप भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

अस्तेय,—

दूसरे की चीज को चुराना छोड़ देने का नाम अस्तेय है। जिस समय दूसरे की चीज को लेने सी जरा भी इच्छा न होगी, तभी अस्तेय का साधन सिद्ध होगा।

अस्तेय प्रतिष्ठांया सर्वरत्नोपस्थानम्।
प.तञ्जल दर्शन, साधन-पाद। ३७

मनुष्य के हृदय में अस्तेय की प्रतिष्टा हो जाने पर उस के सामने संसार के सब रत्न अपने आप आ पहुंचते हैं। अर्थात अस्तेय की प्रतिष्ठा करनेवाले व्यक्ति को कभी धन-रत्न का अभाव नहीं होता।

ब्रह्मचर्य्य,—

इस सम्बन्ध में विस्तृत आलोचना करनी पड़ेगी।

अपरिग्रह,—

शरीर-रक्षा के अतिरिक्त भोग-विलास के साधनों को परित्याग करने के का नाम अपरिग्रह है। कहने का मतलब यह कि लोभ के परित्याग करने ही का नाम अपरिग्रह है। जब "यह माँगता हूँ, वह माँगता हूँ" यह भाव मन में पैदा ही नहीं होगा, तभी अपरिग्रह सिद्ध हो सकेगा।

अपरिग्रह-प्रतिष्ठायां कंथन्तासंबोधनः ।

पातञ्जल-दर्शन, साधन पाद । ३९

अपरिग्रह की प्रतिष्ठा होने पर पूर्वजन्म की बातें स्मरण होने लगती हैं।

नियम साधन

शौच,—

शरीर और मन की मलिनता दूर करने को शौच कहते हैं। परन्तु साबुन तल, फुलेल अथवा एसेन्स इत्यादि बिलासिता की सामग्रियाँ शौच के साधन नहीं हैं ; गोमय, मृत्तिका तथा जल इत्यादि के द्वारा ही शरीर एवं दया आदि सद्गुणों के द्वारा मन की मलिनता को दूर करना चाहिये।

शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसङ्गश्च ।

पातञ्जल दर्शन, साधनम-पाद । ४०

हृदय में पवित्रता रहने से शीरर में यदि कहीं ज़रा भी अपवित्रता मालूम पड़ेगी तो उससे घृणा लगेगी एवं दूसरे के साथ संगति करने में भी घृणा होगी। ऐसा होने पर फिर मन में स्त्री-संग की इच्चा ही न होगी।

सन्तोष,—

प्रतिदिन जो कुछ मिल जाय उसीसे मन को सन्तुष्ट रखने का नाम सन्तोष है। अर्थात् दुराकाङ्क्षा परित्यागा करने का नाम ही सन्तोष है। भोग-विलास आदि इन्द्रिय- भोग्य विषयों की तो कोई बात ही नहीं है—सभी

क्रोध जय।

मनुष्य के जितने रिपु (शत्रु) होते हैं, उनमें क्रोध का नम्बर दूसरा है। काम को यदि किसी प्रकार से बाधा होती है, तो वह क्रोध के रूप में प्रकाशित होता है। इस प्रकार से चित्त को उत्तेजित करने वाला शत्रु काम के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। इस विषय पर सदा ही विचार करते रहना चाहिये कि क्रोध से कौन-कौन सी बुराइयाँ पैदा होती हैं। क्रोध मनुष्य का परम शत्रु है। इसके प्रभाव से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहती है। जिस मनुष्य के ऊपर क्रोध चढ़ा हो उसके मुंह का ओर देखने से मालूम पड़ता है कि मानो उस पर कोई प्रेत सवार है। क्रोध की उतेजना के कारण कभी-कभी मनुष्य की मृत्यु तक होती देखने में आई है। इस प्रकार क्रोध के दुष्परिणामों तथा उसके दमन करने का उपाय सोचते सोचते किसी न किसी दिन अवश्य सफलता लाभ हो सकती है। क्रोध की विपरीत-वृत्ति दया है; सदा के लिये दया-वृत्ति का अभ्यास करने से क्रोध का ह्रास होता है। काम, लोभ, अहंकार (अंहता) एवं दूसरे के दोष की आलोचना जितनी कम करते होंगे, क्रोध भी उतना ही कम होता जायगा। क्षमा, शान्ति तथा दया की जितनी अधिक साधना करोगे, उतना ही क्रोध का ह्रास होगा। दृढ़रूप से प्रतिज्ञा करके बड़ी सावधानी के साथ मनुष्य को क्रोध को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये।

परिकर्म्म-साधन

हिन्दू-शास्त्र उपदेश देता है कि दूसरे का सुख-दुःख, पाप और पुण्य देखकर यथाक्रम मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा करनी चाहिये। अर्थात् दूसरे को सुखी देखकर सुखी होना चाहिए, उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। दूसरे के

सुख में होने का अभ्यास डालने से तुम्हारा ईर्ष्यानल (हिंसा-रूप अग्नि) शीघ्र बुझ जायगा। तुम जैसे सदा आत्म-दुःख हटाने की इच्छा रखते हो ठीक वैसी ही इच्छा तुम्हें दूसरे को दुखी देखने पर भी करनी चाहिये। अपने पुण्य या शुभानुष्ठान से जैसे तुम्हें सन्तोष होता है, दूसरे के पुण्य तथा शुभानुष्ठान से भी वैसे ही प्रसन्न होना चाहिये। दूसरे के पाप देख कर झगड़ा या घृणा न करना और भला या बुरा किसी भी प्रकार का आन्दोलन न करना चाहिये ; सर्वतोभाव से उदासीन रहना चाहिये। इस तरह चलने से हमारे चित्त का अमर्षमल (गाढ़ा-मैला) दूर हो जायगा। यह सदा के लिये स्मरण रखना चाहिये कि जैसे कोई मुझपर अत्याचार—उत्पीड़न करे या कोई मेरी किसी वस्तु को चुरा ले अथवा बुरे अभिप्राय से मेरे घर में प्रवेश करे, ता जैसा मुझे कष्ट होता है ; ठीक वैसे ही किसी के प्रति मेरे द्वारा वे सब काम होने पर वह व्यक्ति भी मेरी ही तरह कष्ट पाता है। अतः अपने हृदय की वेदना (दर्द) का अनुभव करके दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिये। जब सड़े हुये पत्ते और वन्यजात कड़ुए कसैले कन्द फल खाकर भी मानव जीते रह सकते हैं, तब दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुंचा कर एवं दुर्बल के ऊपर अत्याचार करके पेट भरने में कौन-सा बड़प्पन है ? भला, यह संसार का वैभव कितने दिन के लिये है ? जब शैशव की विमल ज्योत्स्ना देखते-देखते छिप जाती है,—यौवनका बल-विक्रम (पुरुषार्थ और शक्ति) ज्वार के जल की तरह उतर जाता है,—प्रौढ़ावस्था (बुढ़ापा) तीन दिन का खेल — संसार करते न करते अंत हो जाता है,—"अब तक उचित रूप से जीवन नहीं बिताया" या "अमुक के मन को कष्ट दिया" अथवा "अमुक के साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करना अच्छा नहीं हुआ" इत्यादि पश्चात्ताप करते-करते जब वार्द्धक्य (बुढ़ापा) चला जाता है, तब थोड़े से समय के लिये आसक्ति क्यों ?

दूसरे पर बल प्रकाश करने की क्या आवश्यकता ? दुर्वल पर अत्याचार क्यों किया जाय ? पर-निन्दा करने में इतनी स्फूर्ति क्यों ? पार्थिव पदार्थों (पृथ्वी की चीजों) के लिये इतना पछतावा क्यों ?

मृत्यु-चिन्ता ।

और भी एक बात यह है कि हमें सदा सर्वदा सब अवस्था में यह स्मरण रखना चाहिये कि मुझे मरना होगा। हमारे मस्तक पर यम का भीम-दण्ड बराबर घूम रहा है। किस पल में मौत की दुन्दुभी बज उठेगी, इसका कोई निश्चय नहीं है। कब किस अज्ञात प्रदेश से अचानक आकर वह हमें ग्रास कर लेगा, कौन जानता है ? अतः कोई भी भला बुरा काम करने से पहले, —"मुझे एक दिन मरना पड़ेगा,"—यह सोचकर उसमें हाथ डालना चाहिए। मौत की बात मन में दृढ़ हो जाने से फिर मर्त्य-जगत् में मदन-मरण के अभिनय पर मन आगे नहीं बढ़ने पावेगा।

इस परिवर्त्तनशील (बदल जाने वाले) जगत् में तो सभी अनिश्चित है, किसी विषय की स्थिरता नहीं है—निश्चित दशा नहीं है ; लेकिन मृत्यु निश्चित है। छाया जैसे वस्तुओं के पीछे चलती है, ठीक वैसे ही मृत्यु भी जीव की सङ्गिनी है। श्रीश्रीमद्भागवत् में लिखा है कि :—

"अद्यवाब्द शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥"

आज हो वा कल या दो, दश अथवा सौ वर्ष पीछे हो, किन्तु एकदिन सभी

को उस सर्वग्रासी (सब को खानेवाले) शमन-सदन का अतिथि अवश्य बनना पड़ेगा। अगणित सैन्य से घिरे हुए एवं शस्त्रादि से भूषित लोक-संहार-कारी सम्राट (राजाधिराज) से लेकर वृक्षतल-वासी फटी कथरी बिछानेवाले फ़कीर तक सभी को एक दिन मौत के मुंह में जाना होगा। मृत्यु अनिवार्य्य है। मृत्यु उम्र की राह नहीं देखती, सांसारिक कार्य्य-सम्पादन की असम्पूर्णता भी नहीं सोचती; मौत को कोई माया या ममता (आदर-यत्न) नहीं होती, उसे कालाकाल का विचार भी नहीं है। मौत किसी का भी अनुरोध उपरोध नहीं सुनती—वह किसी की सुविधा या असुविधा भी नहीं देखती है—किसी का भी सुख-दुख नहीं समझती है—किसी का भला-बुरा भी वह नहीं सोचती है—किसी की पूजा-अर्चा भी नहीं मानती है,—किसी के रूप-गुण या कुल-मान को भी नहीं मानती और न किसी के धन-दौलत या गौरव पर ही दृष्टि डालती है। कितने ही दोर्दण्ड और प्रतापशाली महारथियों ने इस भारत में जन्म लेकर अपने अपने बल-वीर्य्य से ससागरा वसुन्धरा को हिला दिया; किन्तु आज उन में से कोई भी जीता नहीं है—सब के सब कराल मृत्यु के मुंह में चले गये हैं। वास्तव में मनुष्य की ऐसी कोई शक्ति ही नहीं कि जिनसे विभीषिका-भय मौत की राह रोकी जा सकती हो। शारीरिक बल-वीर्य्य, धन-जन, सम्पद, मान, गौरव, दोर्दण्ड-प्रताप, प्रभुत्व प्रभृति सर्व गर्व मृत्यु के सामने हट जायँगे। इस मौत का मर्म्म समझकर ही महादस्यु (बड़े भारी डाकू) रत्नाकरजी सर्व माया (सब कुछ) परित्याग करके धर्म्म-जगत् में महापुरुष के पद पर पहुंच गये थे। श्मशान में शव जलाने जाकर इस नश्वर देह का परिणाम देख क्षणकाल के लिए अनेकों के मन में श्मशान-वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

इसलिये कहता हूँ कि सदा सर्वदा मृत्यु की चिंता जाग्रत रख कर काम करने

से हृदय में पाप की इच्छा का कभी उदय ही नहीं होगा और न दुर्बल पर अत्याचार करने के लिये ही चित्त छटपटायगा ;—विषय-विभव (धन-दौलत) तथा आत्मीय-स्वजन की माया सैकड़ों हाथ बनाने पर भी आसक्ति की जञ्जीर में न बाँध सकेगी। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे जैसे कितने ही महाशय इस संसार में आये और उन्हें इन धन-ऐश्वर्य्य, इस घर-द्वार को 'मेरा" "मेरा" कहकर पुकारा था; हमारी ही तरह स्त्री, पुत्र, कन्याओं को स्नेह के हज़ारों बाहु सृजन करके छाती से लगा लिया था,—किन्तु, हाय! अब वे कहाँ हैं? जिस अज्ञात (अनजान) देश से वह आये थे, उसी अज्ञात देश में वे फिर चले गये। इसी लिये कहता हूँ कि पुत्र-कलत्र (स्त्री), भाई-बन्धु, आत्मीय स्वजन, रुपये-पैसे घर-द्वार, विषय-सम्पत्ति आदि पार्थिव-पदार्थों पर "मेरा" की छाप जोर से न लगानी चाहिये। हमारे शिर पर कराल मृत्यु नाच रही है। कर्म्मसूत्र के फल से ही यह संसार है ; यह विषय सम्पत्ति यहीं पड़ी रहेगी,—अनादि अनन्त काल से ही यहां पड़ी हुई है,—हम जैसे कितने ही लोग—हमारे ही पिता, पितामह, प्रपितामह प्रभृति ने इस स्थान पर—इस घर पर, इस खेती-बाड़ी की ओर,—इस तालाव या बाग के प्रति दो दिन के लिये दानव जैसी दृष्टि डाल कर अपने को भोग-विलास के प्रेमपाश से बाँधने की बहुतेरी कोशिश की थी ; लेकिन काल में —काल की लहरों में वे न जाने कहाँ बह गये ; जिसके अक्षय-भण्डार अनेक वस्तुओं से भरे हुए हैं, उनकी सब चीजें यहीं ज्यों की त्यों ही पड़ी रह गईं, वे कुछ भी साथ में न ले जा सके। क्योंकि मैं तो भगवान् के संसार का केवल-मात्र नौकर हूँ, इस संसार से मौत का परवाना आते ही सब कुछ यहीं छोड़छाड़ कर मुझे चल देना पड़ेगा। इसलिए स्मरण रखना चाहिये कि धन सम्पद का अहंकार बिल विक्रम का अहंकार रूप यौवन का अहंकार, विद्या बुद्धि का अहंकार कुल-मान का अहंकार,सभी वृथा हैं। एक दिन सारे अहंकार,—यहाँ तक कि अहंकार

का अहंकार भी चूर-चूर हो जायगा। अतः स्मरण रखना चाहिये कि भले ही मैं आज पार्थिव (दुनिया का) पदार्थ के (विषय के) अहंकार में मतवाला होकर एक निराश्रय दुर्बल पर पदाघात कर रहा हूँ ; किन्तु एकदिन ऐसा अवश्य ही आवेगा कि जब मुझे श्मशान में शवाकार सोना होगा और उस दिन शृगाल कुक्कुरादि मेरे शव पर पदाघात (लात मारना) करेंगे भूत प्रेत मेरी छाती पर चढ़कर ताण्डव नृत्य करेंगे—उस दिन चुप चाप मुझे सब बातें सहन करनी पड़ेंगी।

इस तरह सोच-विचार करते करते धीरे-धीरे सांसारिक पदार्थों की असारता समझ में आ जायगी, तब आसक्ति का बन्धन ढीला पड़ जायगा। चित्त के अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर ब्रह्मचर्य्य का पालन करना बहुत आसान और सुसाध्य हो जायगा। अब ब्रह्मचर्य्य के सम्बन्ध में आलोचना की जाती है। ब्रह्मचर्य्य की साधना के लिये सब से पहले आवश्यकता है तत्त्व विचार की।

तत्त्व विचार।

—::०::—

केवल वे ही लोग इस ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करने में समर्थ हो सकते हैं, जो कि दृढ़रूप से प्रतिज्ञा कर लें कि "प्राण जाने पर भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर हम कभी पशु न बनेंगे, जब तक जीवन रहेगा, कभी जितेन्द्रिय-वृत्ति न त्यागेंगे।" यह जितेन्द्रिय वृत्ति आसानी से प्राप्त नहीं हो सकती है। महात्मा भर्त्तृहरी का कथन है कि :—

"पीत्वा महोमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्तभूतं जगत्"

मोहमयी प्रमादरूप मदिरा का (शराब) पान करके यह अनन्त जगत् उन्मत्त (पागल सा) हो रहा है। चाहे कोई भी जीव हो, उसके पुरुषवर्ग को उसकी स्त्री जाति ने अपने मोहाकर्षण से खींच रहा है। * सभी लोग इन्द्रियों की उत्तेजना के कारण या अज्ञान की ताड़ना से नरक-रूपी अग्नि में कूद रहे हैं। विद्यालय के बालकों से लेकर बूढ़े प्रिंसिपल तक सभी लोग मुहूर्त्त मात्र सुख के लिये वीर्य्य क्षय करके जीवन का सुख नाश करते हुए वज्रदग्ध (बिजली से जले हुए) वृक्ष की भाँति विचरण कर रहे हैं। इसी तरह निकृष्ट (खराब) वृत्ति के अधीन होने से नरनारियों के हृदय की वृत्ति भी एक दम बिगड़ जाती है। किसी भी वस्तु का वास्तविक ज्ञान उन्हें नहीं रहता।

तब इस आकर्षण से बचने का उपाय क्या है ? अभ्यास और संयम से सभी कुछ हो सकता है। तत्त्व-ज्ञान तथा संयम के अभ्यास से अपने हृदय में यह धारणा दृढ़ कर लेनी चाहिये कि जो नरक का कारण है—जो रोग का कारण है,—जो आत्मा की अवनति का कारण है,—उस काम को हम क्यों करें ? जिसके लिये हम अपने कर्त्तव्य-पथ से भ्रष्ट हो रहे हैं — वह स्त्री है ! विचार करना चाहिये कि —क्या देखकर हम प्यार के मारे छटपटाते हैं और किसके लिये ऐसी पाशव-वासना की आग सुलगाते हैं ? — केवल दैहिक सौन्दर्य्य के लिए ! लेकिन देह क्या है ? यह केवल पञ्चमहाभूत की समष्टि अवस्था के अतिरिक्त और कुछ भी तो नही है ! जिसका विकाश (प्रकाश) समस्त जगत् में फैला हुआ है—

---

* पुरुष के स्त्री पर और स्त्री के पुरुष पर परस्पर आकर्षण का कारण एवं उसके प्रतिकार के उपायों की श्रीश्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थ में विशेषरूप से आलोचना हुई है तथा "प्रेमिकगुरु" में उसकी साधना की विधि लिखी गई हैं। प्रकाशक।

जो विश्व की समस्त वस्तुओं में विद्यमान है, उसके लिये एक सीमाबद्ध स्थान में ऐसा आकर्षण क्यों ? खासकर रूप-यौवन कितने मुहूर्त्त के लिये है ? वह बाल्यावस्था में क्या था,—युवावस्था में क्या हुआ —फिर प्रौढ़ वार्द्धक्य में क्या हो जायगा ? ऐसे परिवर्त्तनशील देह का क्या परिणाम होता है ?—इन बातों का विचार करके देखना चाहिये। वह वृद्धा जो कि जीर्णशीर्ण अवस्था में मौत की खाट पर पड़ी कराह रही है, किसी दिन अवश्य ही युवती थी ; किन्तु अब किस दशा में जा पहुँची है ? इसी प्रकार फिर यौवन में भी जब कोई रोग उत्पन्न होकर इस सुन्दर देह को सड़ा गला देता और प्रेत से भी खराब बना सकता है तब इसके लिये इतनी आसक्ति क्यों ?

किसी मरी हुई रमणी की ठठरी को देखकर इस तरह सोच विचार करो कि :—

"यही नरनारी के शरीर की गति है ! अब कहाँ तो उसका कमल जैसा मुखारविन्द और कहाँ ऐसी अवस्था ! ओह !! अब वह कैसी खराब हालत में देखी जाती है !!! क्या इस ठठरी में उसका पहले का कोई भी चिह्न दिखाई देता है ? जरा सोचिये तो सही कि जिसे आप एक दिन अमृत के समान बड़े प्रेम तथा आदर से पान किया करते थे,—वह अधरामृत अब कहाँ है ? मन प्राण को मतवाले कर देनेवाला अमृत सदृश सुमधुर आलाप अब कहाँ है ? काम के धनुष की भाँति भृकुटि का उसके हावभाव, कटाक्ष का कहीं पता तक नहीं रहा ! जीव ने कामान्ध होकर चमड़े से ढँकी हुई इस ठठरी को ही अमृत सम वस्तु मान कर खूब अपनाया था। किन्तु उस समय यदि इस गति की ओर तुम्हारा ध्यान जाता तो उसे पाकर तुम कभी इतने प्रसन्न न होते।"

इस नश्वर (विनाशशील) शरीर की क्षणभंगुरता के सम्बन्ध में

सदा-सर्वदा विचार करने से काम के दमन करने में बड़ी सहायता मिलती है। यह नवद्वार से युक्त शरीर, जो रक्त, क्लेद मलमूत्र फेन इत्यादि से दुर्गन्धित रहा करता है, यदि साफ न किया जाय तो यह बहुत ही मैला और दुर्गन्धित हो जाता है। तब भला, इस पर इतनी आसक्ति क्यों? महामुनि दत्तात्रेयजी का कथन है कि:—

विष्ठादि नरकं घोरं भगं च परिनिर्म्मितम्।
किमु पश्यसि रे चित्त कथं तत्रैव धावसि॥
भगादि कुच पर्य्यन्त संविद्धि नरकार्णवम्।
ये रमन्ति पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम्॥
अवधूत गीता।

और भी देखिए:—

अमेध्यपूर्णे कृमिजाल संकुले
स्वभाव दुर्गन्धि विनिन्दितान्तरे।
कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते
रमन्ति मूढ़ाः विरमन्ति पण्डितः॥
योगोपनिषत्।

महाकवि तुलसीदासजी का कथन है:—

जैसी पुतली काठकी, सोइ मांसमय नारि।
अस्थि नाड़ि मलमूत्रमय, यन्त्रित निन्दित भारि॥

यह जो शरीर है, क्या तुम नहीं देख पाते कि – इसमें फोड़े हुए हैं, कितनी दुर्गन्धि निकल रही है, चर्म्म से यह ढका हुआ है, सैकड़ों कीड़ों से पूर्ण हैं. मल-मूत्र से सना है और भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है; यद्यपि यह हर तरह के

भोगों का निवास है, परन्तु मोह में आसक्त होने से यह अवश्य ही मृत्यु का कारण बन बैठा है। यही क्षय का द्वार है,—जिसके द्वारा सर्वप्रकार से यौवन और धन एकदम समूल नष्ट हो जाते हैं। न जाने कितने रक्त, मांस, क्लेद, कलङ्क, मल, मूत्र, श्लेष्मा तथा राल इत्यादि की समष्टि के अतिरिक्त जो और कुछ भी नहीं है;—उस शरीर के लिये जो आसक्त है, उसकी रुचि कितनी घृणित होनी चाहिये! जो विष्टा के कीड़े की भांति घृणित विषयों में ही लिप्त रहना पसन्द करता है, उसे प्रेत-पिशाच के अलावा और क्या कहा जा सकता है?

बिन्दुमात्र वीर्य्य के धारण करने की उपकारिता तथा शुक्र नष्ट होने की अपकारिता की ओर सदा ध्यान रखना चाहिये।

यथा :—

मरणं विन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

शिव संहिता।

भ० दत्तात्रेय का कथन है :—

यदि सङ्गं करोत्येव विन्दुस्तस्य विनश्यति।
आत्मक्षयो विन्दुहानाद सामर्थ्यञ्च जायते॥

"यदि स्त्री-सङ्ग करे तो विन्दु (वीर्य्य) नष्ट होता है; और विन्दुनाश होने से आत्मक्षय होता है तथा सामर्थ (शक्ति) भी चली जाती है।" जो लोग जितनी ही वीर्य्य की रक्षा करते हैं उनके हृदय उतने ही प्रफुल्लित मस्तिष्क सबल शरीर शक्ति-शाली एवं मन तथा मुखश्री स्निग्ध और सुन्दर होती हैं। इसीलिये शास्त्र का कथन है कि :—

"ऊर्द्धरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः"

"जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य्य पालन करके ऊर्द्धरेता बन गये हैं, वही मनुष्य के रूप

में असली देवता हैं।" जो ऊर्द्ध्वरेता हैं, मृत्यु उनके लिये इच्छाधीन है, वीरत्व उनके हाथ का खेल है। वीर्य्य के ऊर्द्ध्व-गमन से अतुल आनन्द लाभ होता है। परमयोगी सदाशिवजी का कथन है कि :—

सिद्धेबिन्दौ महायत्ने किं न सिद्यति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत्॥

शिव संहिता।

"जिस समय मनुष्य में विन्दु-धारण करने की शक्ति आ जाती है, उस समय पृथ्वी पर ऐसी कोई भी सिद्धि उसके लिये अप्राप्य नहीं रह जाती ; जिसके प्रभाव से मेरे (शिव के) ब्रह्माण्ड पर ऐसी महिमा विराजमान है।" अतएव यत्नपूर्वक विन्दु धारण करना चाहिये। निरन्तर विन्दु धारण करने से ही योगियों को सिद्धि लाभ होता है। क्योंकि वीर्य्य सञ्चित होने से मस्तिष्क में प्रबल शक्ति का सञ्चय होता है और इस महान् शक्ति के प्रभाव से चित्त में एकाग्रता साधन करना सरल हो जाता है।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः।

पातञ्जल दर्शन।

"ब्रह्मचर्य्य की प्रतिष्ठा होने से वीर्य्य की प्राप्ति होती है।" तात्पर्य्य यह कि ब्रह्मचर्य्य की प्रतिष्ठा हो जाने से मनुष्य के शरीर में ब्रह्मण्यदेव की विमल ज्योतिः प्रकाशित हुआ करती है।

ब्रह्मचर्य्य-हीन की दुर्गति।

ब्रह्मचर्य्य के अभाव से जो सर्वनाश होता है, उस पर बारंबार गंभीरता से विचार करना चाहिये। जननेन्द्रिय का अधिक उपयोग करने तथा उसके लिये अधिक मात्रा में वीर्य्य नष्ट करने से स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ जाता है और नाना प्रकार के भीषण रोग उत्पन्न होने लगते हैं, जिससे लोग धीरे-धीरे पुरुषार्थ तथा मनुष्यत्व-हीन हो जाते हैं। पहले पहल जब कुमार या युवक का अधःपतन होता है, तो वह लज्जित होने लगता है। गुरुजनों के सामने सिर उठाकर उनसे आँख मिलाते हुए निर्भय-चित्त से बात-चीत करने का साहस उसे नहीं होता। धीरे-धीरे उसके शरीर में शुक्रमेह, प्रमेह आदि रोगों की उत्पति होती है। उस समय मूत्र के साथ वीर्य्य गिरने लगता है एवं स्वप्न-दोष भी होने लगता है। स्वभाव में कुछ चिड़चिड़ापन आ जाता है। मामूली कारण से भी उस में असन्तोष का भाव उदय हो जाता है। उसका साहस जाता रहता है और भीरुता बढ़ने लगती है। मन्दाग्नि होकर भूख कम लगती है, कोष्ठबद्धता आदि रोग आकर उसके शरीर में अपना अड्डा जमा लेते हैं। किसी गंभीर विषय पर विचार करने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती—उसके मन पर सदा दुश्चिन्ता का ही अटल राज्य बना रहता है।

धीरे-धीरे आँखों के चारों ओर काली-काली रेखायें पड़ जाती हैं और दाढ़ी-मूँछ तथा मस्तक के बाल भी पतले पड़ जाते हैं। ऐसे समय ही प्रायः मनुष्य को मूत्र-कृच्छ्र रोग हो जाता है। दर्शन-शक्ति तथा श्रवणशक्ति (देखने और सुनने की शक्ति) भी कम हो जाती है और सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति तो

उसमें बिलकुल ही नहीं रह जाती ; यहाँ तक कि वह बिलकुल पुरुषत्व-हीन हो जाता है। स्त्री की ओर दृष्टि पड़ने या उसका स्पर्श करते ही वीर्य्य गिर पड़ता है। बहुतों पर तो ऐसी दशा में मूर्छा और मृगी इत्यादि बहुत से रोग आक्रमण कर देते हैं। मूत्र नली में ज्वाला (जलन) पीड़ा तथा टीस होने लगती है एवं बार बार पेशाब करने की इच्छा होती है। मात्रा से अधिक वीर्य्य नष्ट करने से मेरुदण्ड तथा मस्तिष्क की क्रिया भी बहुत विकृत हो जाती है। रोगी की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, उसका चित्त कभी एकाग्र नहीं रहता, कभी-कभी तो उसमें उन्माद का दौरा भी आ जाता है। हृदय सदा धड़कता रहता है, ओंठ और कंठ सदा ही सूखे रहते हैं। हाथ, पैर, आँख और ब्रह्मरन्ध्र में ज्वाला होती है। बहुत से लोग तो रोग की यन्त्रणा न सह सकने के कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं। चिकित्सा-शास्त्र में अधिकांश रोगों का मूल कारण वीर्य्य का विनाश ही माना गया है। अस्तु, यह बात तो सर्वसम्मत तथा चिकित्सा विज्ञान की सारभूत और एकमात्र सत्यस्वरूप उपदेशमय है कि वीर्य्य का नष्ट होना ही सब रोगों का मूल कारण है, इसके द्वारा ही मनुष्य का मनुष्यत्व तथा पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है, एवं इसीके प्रभाव से वह मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगता है, यहाँ तक कि वह मनुष्य नाम के योग्य भी नहीं रह जाता।

ब्रह्मचर्य्य के अभाव से जिस प्रकार शरीर की दुर्दशा होती है, उससे भी अधिक दुर्दशा मन की होती है। समस्त शास्त्रों में प्रवेश करने वाली तीक्ष्ण-बुद्धि उद्योग-शीलता, अध्यव्यवसाय, उच्च अभिलाषा, क्षमा, दया, संयम करने की शक्ति, स्वाधीनता, उल्लास, स्फूर्ति, धैर्य्य, बल, उत्साह उदारता तथा भक्ति प्रभृति जितने गुण एवं अधिकार मनुष्य के लिये आवश्यक हैं, उन सबसे वञ्चित होना पड़ता है। मनुष्य की मनुष्यता नष्ट करने के लिये बल, वीर्य्य, आयु तथा स्वास्थ्य इत्यादि

सबके नष्ट होने का एकमात्र कारण वीर्य्यं का नष्ट होना ही है। इन सब बातों को सोच-समझ कर वीर्य्य की रक्षा करना तथा उसे स्थिर और अखण्ड रूप से धारण करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये मुख्य कर्त्तव्य है। खासकर संरक्षकों तथा आत्मीय-स्वजनों को अपने बालकों के ऊपर सदा सर्वदा विशेष सावधानी से दृष्टि रखनी चाहिये। माता को चाहिये कि वह बालकों को अपने पास से कभी हटने न दे। छोटे बच्चे की भाँति यदि वह उन्हें सदा अपनी गोद में रख सके तो बड़ा उपकार हो। वे कुछ भी नहीं जानते,—वे कुछ भी नहीं बूझते,—क्षणिक सुख की आशा से वे अपना सर्वस्व नष्ट कर देते हैं। पुत्र की अवस्था जैसे ही नव-वर्ष की हो जाय कि फिर उसे ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा देनी आरम्भ कर देनी चाहिये। बालिकाओं को भी इस विषय की शिक्षा देना भूला न जाय।

विशेष नियम

ब्रह्मचारी को उपर्युक्त तत्त्व पर विचार करना चाहिये, साथ ही निम्न-लिखित नियमों का पालन करना भी उसके लिये उचित है।

(१) स्त्रियों से सदा-सर्वदा दूर रहना चाहिये। अग्निरूपिणी स्त्री के समीप घृत-रूपी पुरुष का रहना मंगल-जनक नहीं है। महर्षि कपिल देव का कथन है :—

सङ्गं न कुर्य्यात् प्रमदासु यस्तु
　　योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभा
　　वदन्ति यां निरयद्वारमस्य ॥
यो पयाति शनैर्मायां योषिद्देवविनिर्म्मिता ।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥

श्रीमद्भागवत ।

"जो व्यक्ति योग में पारङ्गत होना चाहते हैं, उन्हें कभी स्त्री का संसर्ग करना उचित नहीं है। सिद्ध महापुरुषगण कहा करते हैं कि नारी नरक का द्वार है। देवताओं ने प्रमदा-रूपिणी माया बना दी है, वह सेवा-सुश्रूषा आदि कार्य्य द्वारा धीरे-धीरे पुरुष को अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करती रहती है, परन्तु ज्ञानी लोगों को तृण से ढके हुए कूप की भाँति उन्हें अपने विनाश का कारण समझना चाहिये।" * महात्मा तुलसीदासजी ने भी स्त्री जाति को बाघिनी कहा है। यथा :—

दिने मोहिनी रात बाघिनी
　　पल-पल लोहू चूसे ।
दुनिया सब ही बाउर होके
　　घर-घर बाघिनी पोषे ॥

अतएव नारी को बाघिनी समझ कर दूर रहने में ही मनुष्य का कल्याण है न तो कभी उन के पास ही रहना चाहिये, न कभी उससे एकान्त में बात

---

*ब्रह्मचारिणियां भी पुरुष के विषय में ऐसी ही भावना करें।

चीत ही करना चाहिये, न कभी उसके साथ एक ही घर में रहना चाहिये और न उसके अंग-प्रत्यंग का ही निरीक्षण करना चाहिये।

(२) जिस पुस्तक में स्त्री-पुरुष के प्रेम का वर्णन हो, उसे कभी न पढ़ना चाहिये। थियेटर, बायसकोप तथा नाच गान में भी कभी न जाना चाहिए। स्त्री संग तो कभी भूल कर भी न करना चाहिये ; यहाँ तक की स्वप्न में भी स्त्री की याद न करनी चाहिये।

(३) मन में दुश्चिन्ता तथा दुर्विचारों का समावेश न होने पावे। अगर मन में इन्द्रियों के विषयों की चिन्ता करें, तो फिर पाप में बाकी ही क्या रहा ? किसी न किसी काम में सदा ही लगे रहना चाहिये जो लोग आलसी होते हैं या अधिक भोजन करते हैं, केवल वेही इन्द्रियोंकी लालसा से कष्ट पाते हैं। इसीलिये यदि कोई काम काज न हो तो धार्म्मिक पुस्तकों का ही पाठ करना चाहिये। जैसे ही किसी प्रकार की दुर्वासना मन में उत्पन्न होने लगे, मनको तुरंत रोक लेना चाहिये। उस समय ऊँचे स्वर से किसी देवता के स्तोत्र का पाठ या नाम जप करने अथवा भगवत् विषयक भजन गाने से विशेष उपकार होता है।

(४) अधिक रात्रि बीतने से पहले ही सो जाना एवं बड़े सवेरे उठ बैठना आवश्यक है। सो जाने के पहले ठण्डे जल से हाथ पैर धोकर तथा धुला हुआ स्वच्छ वस्त्र पहन कर शय्या पर शयन करना चाहिए। अकेला ही सो जाना कर्तव्य हैं। जब तक नींद न आजाय तब-तक लेटे ही लेटे भगवान का ध्यान करना उचित है। निद्रा के पहले और निद्रा टूटते ही आवश्यक परिमाण में शीतल (ठण्डा) जलपान करना चाहिये। सोने के कमरे में शुद्ध-वायु के आने जाने का भी प्रबंध करना विशेष आवश्यक है। रात्रि में जागना विशेष हानिकारक होता है।

(५) इस बात की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि पेट हमेशा साफ रहे ; यानी कब्ज़ी न होने पावे तथा पेट के नीचे भाग में वायु न जमने पावे। उत्तेजक और गरिष्ट वस्तुओं को कभी जबान पर भी न रखना चाहिये ! आहार की व्यवस्था पहले अध्याय में लिखी ही गई है।

(६) इन्द्रियों को जीतने के लिये शारीरिक परिश्रम से बड़ा उपकार होता है। प्रति दिन किसो प्रकार का व्यायाम करना या खुली हवा में थोड़ी देर तक अवश्य दौड़ना चाहिये।

(७) अपने को सदा पवित्र रखने पर पाप से स्वयं घृणा हो जाती है। यह शरीर भगवान का मन्दिर है। सदा सर्वदा इस बात को ध्यान में रखने से हृदय में पाप प्रवेश नहीं कर सकता।

(८) सत्सङ्गति की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। महापुरुषों की ही कृपा से जगाई-माधाई जैसे बहुत से महापापी तक कृतार्थ हो गये हैं। कुसंग से सदा ही बचना चाहिये। अश्लील ग्रन्थों का पढ़ना, अश्लील चित्रों का देखना, अश्लील बातों या गानों का सुनना—सभी कुसङ्ग में गिने जा सकते हैं ! यहाँ तक कि मैथुनासक्त इत्तर (दूसरी) प्राणी तक को देखना भी उचित नही हैं।

(९) कोमल शय्या यानी रूई का गद्दा इत्यादि पर सोना ठीक नहीं है। कड़ी शय्या और कड़ा तकिया आदि लाभ दायक हैं। सर्व प्रकार की विलासिता को सर्वथा त्याग देना चाहिये।

(१०) भगवान की मातृ मूर्त्ति का ध्यान करने से ब्रह्मचर्य्य पालन करने में बड़ी सहायता मिलती है। काम की विपरीत वृति

भक्ति है ; भक्ति का जितना ही अनुशीलन किया जायगा, उतनी ही कुप्रवृत्तियाँ दूर भागती जायँगी। तुलसी दास जी का कथन है, कि—

"जहां राम तहाँ नहि काम"

जहाँ भक्ति है, वहाँ काम का अधिकार नहीं जम सकता। इसलिये सदा ही भक्ति को उच्च बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रातः काल तथा सन्ध्या के समय गुरु जनों को प्रणाम करना चाहिये और घर के आसपास यदि कोई मंदिर हो तो वहां भी प्रणाम कर आना चाहिये। अपने माता को भी प्रणाम करने अथवा उसका ध्यान करने से विशेष उपकार होता है। इस संसार में मां की भाँति पवित्र, मधुर आनन्द तथा शान्ति-वर्द्धक कोई भी सामग्री नहीं है। माँ शब्द ही पवित्रता की खान है, माँ कह कर पुकार ने से ही हृदय मानो पवित्र भावों से परिपूर्ण हो जाता है। इसीलिये भगवान् को माँ कह कर पुकारने से जितना आनन्द होता है, उतना आनन्द और किसी भी नाम से नहीं होता। जिसके हृदय में सदा भगवान् का मातृ भाव जाग्रत रहता है, उसका हृदय सदा ही सरस रहता है और उसे किसी भी प्रकार के कलङ्क का भय नहीं रहता। संसार की सभी स्त्रियां भगवान् के मातृ भाव के विकाशके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ; सुतरां सभी स्त्रियां माता का ही स्वरूप हैं। जिसके हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न हो जात है उसका चित्त पवित्रता से ओत-प्रोत हो जाता है ; फिर भला उसके हृदह में अपवित्र भावों को स्थान कैसे मिल सकता हैं ? यदि सारे संसार में ही मातृ भाव का अंकुर उत्पन्न हो जाय तो मनुष्य को सारी पृथ्वी पवित्रतामय दिखाई दे सकती है। अतएव किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम उसे अपनी माता समझने लगो तो फिर यह काम रूपी कुत्ता तुम्हारे पास तक भी न फटकेगा।

काम को दमन करने का सबसे बढ़ कर उपाय भगवान से प्रेम करना है। मानव एकबार यदि उन प्रेममय के पवित्रप्रेम में गोता लगा सके तो फिर काम से कलुषित प्रेम में मनुष्य का चित्त नहीं फँस सकता।

यदि अपने को सुधारने की इच्छा न हो तो यहां तक जितने नियमों का निर्देश किया गया है, उनमें से कोई भी लाभ दायक नहीं हो सकता। अपने को पवित्र बनाने की धारणा यदि हम मन में दृढ़ कर लें तो इन नियमों के अनुसार चलने पर आशा से अधिक फल प्राप्त होगा ही। अतएव बहुत हो दृढ़ प्रतिज्ञा करके अपने मानसिक और नैतिक स्वभाव को नियमित बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

गृहस्थका ब्रह्मचर्य।

अविवाहित एवं कुमार ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त अन्य गृहस्थ व्यक्ति भी यदि सत्यवादी और ज्ञाननिष्ठ होकर ऋतुकाल के अतिरिक्त अन्य समय में स्त्री का संसर्ग न करें तो उनकी गणना भी ब्रह्मचारियों में ही की जा सकती है। यथा :—

भार्य्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति वै द्विजः॥

महाभारत।

ब्रह्मचर्य्य की अवस्था जब तक व्यतीत न हो जाय, तब तक विवाहित पुरुष को भी स्त्री प्रसंग न करना चाहिये। जब तक शरीर का गठन भली

भाँति होकर वीर्य्य परिपक्व न हो जाय और शरीर भली-भाँति आरोग्य न हो जाय तब तक सन्तान उत्पन्न नहीं करना चाहिये। गृहस्थ को वंश की रक्षा तथा भगवान की सृष्टि को कायम रखने के लिये सन्तान की इच्छा से चित्त को संयमित करके प्रति मास एक दिन अपनी विवाहित स्त्री से प्रसङ्ग करना चाहिये।

कुछ लोगों के मन में यह शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि यदि सब लोग जितेन्द्रिय हो जायँगे, तो गृहस्थ धर्म कैसे चल सकेगा? इसके उत्तर में केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार इन्द्रियों को अपने वश में किये बिना विवाह करने यानी गृहस्थ बनने की विधि नहीं है। पहले ब्रह्मचर्य्याश्रम का पालन होता है, तब फिर गृहस्थाश्रम का पालन होता है। बाल्यावस्था के बाद ही ब्रह्मचर्य्य आश्रम आरम्भ होता है। ब्रह्मचर्य्य के द्वारा इन्द्रियों का दमन कर लेने पर जब चित्त शान्त तथा हृदय पवित्र हो जाय तो मन में गृहस्थ बनने की इच्छा उत्पन्न होने पर अपने रूप, गुण तथा कुल के अनुकूल स्त्री का पाणि ग्रहण करना चाहिए। हमारे हिन्दू-शास्त्रों का यही अमूल्य उपदेश है कि विषय-वासना को भस्म करने के बाद विषयों का भोग करे और जितेन्द्रिय होने पर स्त्री ग्रहण करे। बकरा-बकरी की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिये आर्य्य ऋषियों ने गृहस्थ धर्म की व्यवस्था नहीं की है। सन्तान उत्पन्न करने का उत्तर दायित्व मनुष्य के लिये कितने महत्व का है, इन्द्रियों के वश में किये बिना ऐसे महान् कार्य्य में प्रवृत्त होना क्या सर्वनाश का कारण नहीं है? जिसने अपनी इन्द्रियों को बश में नहीं किया, उसमें और पशु में भला क्या अन्तर है? सुतरां, आज कल गृहस्थ लोग पशुओं की भाँति स्त्रियों में आसक्त हैं? इसीसे उनकी सन्तान भी पाशविक प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होती

हैं और देश में पाप को वृद्धि करती है। गृहस्थ का पवित्र दाम्पत्य-जीवन धर्म्ममय—प्रेममय—आनन्दमय होता है।

यौगिक-साधन।

—*०*—

अब ब्रह्मचर्य्य का साधन करने में जिन-जिन शारीरिक क्रियाओं से सहायता मिलती है, उनका उल्लेख करके इस विषय का उपसंहार किया जायगा।

योग-शास्त्र के अनुयायी के लिए आसन मुद्रा तथा प्राणायाम जितेन्द्रिय बनने के विशेष मार्ग हैं। प्रणायाम इत्यादि मन को स्थूल से सूक्ष्म की ओर एकाग्र कर देते हैं, सुतरां वे निकृष्ट इन्द्रिय-उत्तेजना के घोर विरोधी शत्रु हैं।

आसन-साधन।

—*०*—

शरीर न हिले, न डुले, न दुखे, चित्त में किसी प्रकार का उद्वेग न हो तथा चित्त चञ्चल न हो—ऐसी अवस्था में सुख से बैठने को आसन कहते हैं। योग-शास्त्र में चौरासी प्रकार के आसनों का उल्लेख पाया जाता है; उन में से जिनका अभ्यास करने से ब्रह्मचर्य्य का पालन करने में सहायता मिलनी है, केवल उन्हीं कुछ आसनों का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है।

बांई जाँघ पर दाहना चरण एवं दाहनी जाँघ पर बायाँ चरण रखकर दोनों हाथों को पीठ की ओर घुमा कर बायें हाथ से बायें चरण का अंगूठा और दाहिने

हाथ से चरण का अंगूठा पकड़ना चाहिये एवं तालू के मूल में जिह्वा का अग्रभाग तथा हृदय में चिबुक स्थापित करके नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करके बैठ जाय। इसी का नाम पद्मासन है।

पद्मासन दो प्रकार का है, यथा—मुक्त और बद्ध। उपर्युक्त नियम से बैठने को बद्ध-पद्मासन कहते हैं एवं हाथों को पीठ की ओर से न ले जाकर चरण के अंगूठे न पकड़ते हुए दोनों हाथों को चित रखकर बैठने का नाम मुक्त-पद्मासन है। पद्मासन लगाने से निद्रा, आलस्य तथा जड़ता इत्यादि शरीर की ग्लानियाँ दूर होकर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

एक पैर की एड़ी द्वारा योनि-स्थान को बड़े जोर से दबा रक्खे और दूसरे पैर की एड़ी से जननेन्द्रिय के ऊपर उसके मूल-देश को दबा कर रक्खे एवं हृदय में चिबुक (ठोड़ी) टिका कर शरीर को सरलभाव से संस्थापन-पूर्वक दोनों भौंहों के मध्यप्रदेश में दृष्टि स्थापना करे यानी शिवनेत्र होकर निश्चल भाव से बैठने का नाम सिद्धासन है। सिद्धासन के द्वारा स्नायु का विकास होता है और समस्त शरीर की बिजली के लिये चलने-फिरने की सुभीता हो जाती है।

दोनों पैरों को फैलाकर परस्पर असंयुक्त (अलग) भाव से रखना चाहिये। इसके बाद दोनों हाथों से दृढ़ता-पूर्वक दोनों अंगूठे पकड़ कर जाँघ के ऊपर मस्तक रख दे। इस की साधना उपुड़ (औंधे झुककर) होकर करनी पड़ती है—इसी से इसका नाम पश्चिमोत्तान आसन है। वायु का उद्दीपक होने के कारण कुछ लोग इसे उग्रासन भी कहते हैं।

दोनों एड़ियों को अण्डकोष के नीचे परस्पर उलटा कर पीछे की ओर उसका ऊर्द्ध्वभाग बाहर करना चाहिये एवं दोनों जाँघ भूमिपर संस्थापित कर दोनों पर मुख इस ढंग से स्थापित करना चाहिये, जिससे वह बाहर न रहे। इस भाव से

मुख स्थापन-पूर्वक जालन्धर-बन्ध यानी तालू के मूल में जिह्वा का अग्रभाग स्थापित कर नासिका के अग्रभाग को देखता रहे। इसका नाम सिंहासन है।

ब्रह्मचारियों के लिये इन्हीं चार प्रकार के आसनों का अभ्यास करना मंगल-जनक है। इनमें से किसी भी आसन का अभ्यास कर लेने से काम चल सकता है। मगर दो या उससे अधिक आसनों का अभ्यास करने से कोई हानि नहीं हो सकती। दो हाथ लंबे और डेढ़ हाथ चौड़े किसी आसन पर बैठ कर आसन का अभ्यास करना चाहिये। ब्रह्मचारी के लिये कुश का आसन ही सबसे उत्तम है। आसन पर बैठकर उच्चतर चिंतन एवं प्राणायाम जैसी उत्तम क्रियादि की साधना करनी चाहिये। आसन का अभ्यास करते समय पहले पहल कुछ असुविधा तथा कष्ट अवश्य मालूम पड़ता है; परन्तु अभ्यास हो जाने पर इस से बहुन आनन्द लाभ होता है। आसान का अभ्यास करने से जिस समय सुख-दायक भावों का संचार होगा, तभी उन से उपकार हो सकेगा—अन्यथा नहीं।

ततो द्वन्द्वोऽनभिघातः।

पातञ्जल दर्शन, साधन-पाद ४८

आसन के अभ्यास से सर्वप्रकार के द्वन्द्व छूट जाते हैं; यानी शीत, ग्रीष्म, (जाड़ा-गरमी) क्षुधा,तृषा, राग, द्वेष, प्रभृति किसी प्रकार के द्वन्द्व कष्ट नहीं पहुँचा सकते। आसन सिद्ध होने वर ऐसी एक सहन-शक्ति उत्पन्न होती है, जो और किसी भी प्रकार से नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य्य का पालन करने के लिये आसन विशेष आवश्यक है।

———

प्राणायाम साधन।

—*:०:*—

आसन का भली-भाँति अभ्यास हो जाने पर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक-गति को भंग करके उसे कुशलता-पूर्वक शास्त्रोक्त नियम से चलाने का नाम प्राणायम है। प्राणायाम कहने से हम साधारणतः रेचक, पूरक और कुम्भक—इन्हीं तीन प्रकार की क्रियाओं का अर्थ समझते हैं। बाहर की वायु को कर्षित करके भीतर का अंश पूर्ण करने को पूरक तथा जल से भरे हुए घड़े की भाँति भीतर ही वायु धारण करने को कुम्भक और उसी घृत वायु को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं।

उत्तर या पूर्व की ओर मुँह करके कुशासन पर बैठ जिसे जिस आसन का अभ्यास हो, उसे उसी आसन को लगा कर मेरुदण्ड (रीढ़), वक्षस्थल गले तथा मस्तक को सीधी रख भौंहों के बीच में दृष्टि को स्थिर करना चाहिए। इसके बाद पहले हाथ के दाहिने अंगूठे से दाहिने नासिकापुट को पकड़ कर श्वास बन्द करते हुए वायु को रोक कर प्रणव (ॐ) अथवा अपने अपने इष्टमन्त्र का सोलह बार जप करते करते बायें नथने से वायु को परिपूर्ण करके कनिष्ठिका और अनामिका अंगुली से बायें नथने को पकड़ कर वायु को रोकते हुए ॐ अथवा मूलमन्त्र का चौंसठ बार जप करते करते कुम्भक करे; इसके बाद अँगूठा दाहिने नथने से उठाकर ॐ या मूलमन्त्र का जप करते-करते दाहिने नथने से वायु को निकाल दे। इसी प्रकार फिर उलटे तौर पर अर्थात् श्वास छोड़ने के बाद उसी दाहिने नथने से ॐ या मूलमन्त्र का जप करते करते पूरक एवं दोनों नथने को बन्द करके कुम्भक

करे और इसके बाद बायें नथने से रेचक करे। इसी प्रकार ठीक पहले की तरह फिर नाक से कथित रीति के अनुसार पूरक, कुम्भक और रेचक करे। पहले पहल अभ्यास करते समय यदि समय १६।६४ ३२ बार मन्त्र का जप करके प्राणायाम करने में कष्ट मालूम पड़े तो ८।३२।१६। बार या ४।१६ ८ बार मन्त्र जप करते करते प्राणायाम करना चाहिये। बायें हाथ की अंगुलियों के पोरों से जप की संख्या करता रहे।

जिनको मन्त्र जप करने की सुविधा नहीं है, (मुसलमान ईसाई इत्यादि) उनको एक, दो, तीन आदि संख्या से ही प्राणायाम करना चाहिये; नहीं तो फल मिलने की सम्भावना नहीं रहेगी। क्योंकि ताल-ताल पर क्रम से श्वास-प्रश्वास की क्रिया सम्पन्न करनी होती है। परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि जोर से रेचक या पूरक न होने पावे। रेचक के समय विशेष सतर्क एवं सावधान रहना चाहिये। इतने धीरे-धीरे श्वास परित्याग करना चाहिये कि हाथ पर रक्खा हुवा सत्तू भी निश्वास के वेग से उड़ न सके। पूरक के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं रुका हुआ वायु कण्ठ के नीचे न चला जाय; एवं श्वास-प्रश्वास गिरे हुए तेल की धारा की भाँति बहने लगे। वायु का व्यतिक्रम होने पर नाना प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

प्रातःकाल, दो-पहर को शाम तथा आधी-रात के समय प्राणायाम का अभ्यास करना अच्छा है। मैला और कूड़ा-करकट से युक्त स्थान में, दूषित वायु में वृक्ष के नीचे, जिस मकान में मिट्टी के तेल का दीपक जलता हो, वहाँ भी प्राणायाम करना ठीक नहीं। मल-मूत्र का वेग रोक कर, भूख से व्याकुल अवस्था में या भोजन पचने के पहले प्राणायाम करना भी हानिकारक है। ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करने के लिये प्राणायाम के समान और कोई भी उत्तम उपाय नहीं हैं। जैसे ही मन में

कोई दुश्चिन्ता आवे या निन्दित स्थान पर अथवा कुदृश्य की ओर मन जाय तो तुरन्त ही ऊपर लिखे हुए नियमों के अनुसार कोई भी आसन लगाकर प्राणायाम करने से प्रत्यक्ष फल मिलता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से तुरन्त ही विशेष शान्ति मिलती है। इसके बाद क्रमशः और भी अभ्यास करने से मुख पर ज्योति विकसित हो जाती है। शुष्क दाग और चिन्ता की रेखा दूर हो जाती है। गले का स्वर सुमिष्ट (उत्तम मीठा) हो जाता है ; यौवन की नवीन-किरण दिखाई पड़ती है ; सुख का चिर वसन्त आकर हृदय पर अधिकार जमा लेता है।*

मुद्रा साधन।

ब्रह्मचारी के लिये मुद्रा का साधन करना बहुत ही उपकारी है। शरीर को सिकोड़ और फैलाकर अपनी इच्छा के अनुसार वायु इत्यादि के परिचालक करने को मुद्रा कहते हैं।

बाँयें पैर की ऐड़ी से योनि-देश (गुह्यदेश के ऊपर) को दृढ़ भाव से दबा कर दाहिने पैर को सीधा सरल भाव से फैला कर बैठ जाय ; इसके बाद उस दाहिने पैर को दोनों हाथों से दबा कर रक्खे एवं कण्ठ (गले) में चिबुक स्थापित करके

---

* नाड़ी-शोधन करके प्राणायाम करना कर्त्तव्य है। केवल रेचक और पूरक द्वारा पहले नाड़ी शोधन करके प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। "योगी-गुरु" पुस्तक में नाड़ी-शोधन की प्रक्रिया विशेष रूप से लिखी गई है।

कुम्भक द्वारा वायु को रोके। अन्त में प्राणायाम में नियमानुसार धीरे-धीरे इस वायु को रेचन करे। इस क्रिया को महा-मुद्रा कहते है।

किसी एकान्त गृह में बालिस्त लम्बे और चार अङ्गुल चौड़े, कोमल तथा सफ़ेद सूक्ष्मवस्त्र (पतला कपड़ा) द्वारा नाभिदेश को लपेट कर कमर को सूत से बाँध ले। पीछे से सारे शरीर में भस्म लपेट कर सिद्धासन पर बैठे और दोनों नासा-पुटों से प्राणवायु का आकर्षण करके बलपूर्वक अपान वायु से युक्त करे एवं अन्तमें जब-तक वायु सुषुम्ना विवर में जाकर प्रकाशित न हो, तब तक अश्विनी मुद्रा द्वारा गुह्यदेश को सिकोड़ते और फैलाते रहना चाहिये। इस क्रिया का अभ्यास करने से कुल-कुण्डलिनी जाग्रत होती है, इसीसे इसका नाम शक्ति-चालिनी मुद्रा है।

पहले पूरक योग के द्वारा अपने मूलाधार-पद्म में वायु के साथ मन को स्थापित करे। गुह्य द्वार और उपस्थ के मध्यवर्ती स्थान को योनि मण्डल कहते हैं। इस योनिस्थान को आकुञ्चित करके कुम्भक करना चाहिये। यथासाध्य कुम्भक करके धीरे-धीरे वायु का रेचन करे। प्राणायाम की ही मात्रा के योग से करना चाहिये। इस मुद्रा को योनि-मुद्रा कहते हैं।

नाभि के ऊर्द्ध भाग तथा अधोभाग का पश्चिमोत्तान करे यानी नाभि को सिकोड़ करके प्राय मेरुदण्ड में मिला दे। इस क्रिया का अभ्यास करने को उड्डीनबन्ध-मुद्रा कहते हैं।

दूसरा प्रकार :—कुम्भक के द्वारा नाभि के नीचे की अपान वायु को नाभि के ऊपर उठाकर स्थापित करे।

अपने अपने अभ्यास किये हुये आसन पर बैठ कर मूलधार को सङ्कोचित

करके अपना वायु का आकर्षण-पूर्वक प्राणवायु के साथ मिला कर कुम्भक करे। इसे मूलबन्ध-मुद्रा कहते हैं।

जिह्वा को धीरे-धीरे ऊपर की ओर उलट कर कपाल कुहर में प्रविष्ट करे ; इसके बाद दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि को स्थिर करे इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।

सिद्धासन पर बैठ कर दोनों हाथों के अंगूठों कान, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्र, मध्यमायों से मुख विवर को बन्द करे। अन्त में दोनों ओंठों को काक-चञ्चु ही भाँति पतला करके उनके द्वारा वायु का आकर्षण करके कुम्भक करे। अन्तमें नासिका के द्वारा वायु का रेचक करे। नदी में कण्ठ तक जल में रह कर भी इस मुद्रा की साधना की जा सकती हे। इसका नाम काका-मुद्रा है।

पेट के दोनों बगल पर दोनों हाथ रख कर पूरक के योग से प्राण और अपान वायु को नाभि के स्थान पर धारण करके कुम्भक करना चाहिये एवं पेट की बगल को हथेली से धीरे-धीरे दबाता रहे। इस क्रिया को महावेध-मुद्रा कहते हैं।

स्थिर भाव से सुख के साथ आसन पर बैठ कर धातु या पत्थर के किसी सूक्ष्म द्रव्य की ओर टकटकी लगा कर देखता रहे। परन्तु लक्ष्य रक्खे की उस समय शरीर जरा भी न हिलने पावे। इसी प्रकार जब तक आँखों से जल न गिरने लगे तब तक देखता रहे। अथवा मस्तक, ग्रीवा, पीठ तथा पेट को समान भाव से रख कर अपने शरीर को सीधा कर बैठे। इसके बाद निमेष और उन्मेष बन्द करके नाभि-मण्डल में दृष्टि को स्थापित करे और थोड़ी-थोड़ी वायु को भी धारण करता जाय। इस क्रिया का साधन करने से चित्त बहुत ही शीघ्र एकाग्र होता है। *

---

* इन सारी क्रियाओं को किसी जानकार सज्जन से शिक्षा लेनी चाहिये हम लोग हम लोग भी शिक्षा दे सकते हैं। — प्रकाशक।

इन मुद्राओं में से केवल दो-तीन का अभ्यास कर लेना ही यथेष्ट है। सबका अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। छः मास के परिश्रम से ही एक मुद्रा का अभ्यास किया जा सकता है। मुद्रा भी शारीरिक व्यायाम के ही समान होती है। मुद्रा का अभ्यास करने से शुक्र धातु की भली भांति रक्षा की जा सकती है। इस के द्वारा वीर्य्य का स्तम्भन होता है। मुद्रा का साधन करने के कौशल से ही उपस्थ पर्व से शुक्र धातु मेरुदण्ड की ओर जाती है; यानी उर्द्धगामी हो जाती है। इसके अभ्यास से जिस व्यक्ति का वीर्य्य नष्ट हो गया है, वह भी शीघ्र ही स्वस्थ होकर बलवान हो जाता है, एवं बहुत से रोग भी मुद्रा साधन से नष्ट हो जाते हैं। सुतरां, ब्रह्मचारी के लिये मुद्रा की साधना करना अत्यन्त आवश्यक है।

आसन, मुद्रा और प्राणायाम का अभ्यास करने से क्या उपकार होता है, कुछ दिनों तक अभ्यास करने से ही इस बात का पता चल सकता है परंतु ऐसा क्यों होता है इस बात की युक्तियों तथा प्रमाणों के लिये इस छोटी-सी पुस्तक में स्थान नहीं। सारस्वत मठ से प्रकाशित योगीगुरु और ज्ञानीगुरु नामक पुस्तकों में तरह तरह के प्राणायाम और उच्चाङ्गों की साधना, प्रत्याहार, धारणा ध्यान इत्यादि युक्ति पूर्वक प्रकाशित किये गये है। इस छोटी सी पुस्तक में उनकी फिर से आलोचना करने का स्थान नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर साधक इन दोनों पुस्तकों को देख सकते हैं।

———

उपसंहार

प्यारे युवक गण ! अब आर्य्य ऋषियों के द्वारा युग-युगान्तर से आविष्कृत और तपस्या के प्रभाव से अनुभूत तथा लोक के हित के लिये प्रचारित "ब्रह्मचर्य्य" का पालन करके मृत्यु लोक में अमर बनो। ब्रह्मचर्य्य का पालन करके बल, वीर्य्य मेधा, आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करके अपना तथा समाज का महान उपकार करो यदि कोई इन सारे नियमों का पालन न कर सके ; तो भी जहाँ तक हो सके, उसे ब्रह्मचर्य्य का पालन करने में उदासीन न होना चाहिये। जो व्यक्ति जितना ही ब्रह्मचर्य्य का पालन करेगा, उतना ही फल उसे अवश्य प्राप्त होगा। सच्चा ब्रह्मचारी केवल ब्रह्मचर्य्य व्रत का ही पालन कर समय पर ब्रह्म की उपासना का अधिकारी होता है। ब्रह्मचर्य्य की भित्ति (नींव) के बिना धर्म प्रतिष्ठा वास्तव में आत्म प्रवञ्चना है।

देश की सारी आशाओं के आधारस्वरूप पवित्र हृदय प्यारे बालकगण ! तुम ब्रह्मचर्य्य का पालन करो,—ब्रह्मचारी बन जाओ,—शास्त्र के आदेशों के अनुसार व्रत की रक्षा करो,—तुम देखोगे कि इससे वही अवस्था, वही बल, वही आयु, वही स्वास्थ्य, वही आनन्द और वही जीवन फिर से प्राप्त हो जायेगा। फिर घर घर में व्यास, वाल्मीकि पतञ्जलि, गर्ग तथा जैमिनि आदि जन्म ग्रहण करेंगे ! एवमस्तु।

ब्रह्मचर्य्य-साधन

तीसरा अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा-विधि

दिन-चर्य्या

—:*०*:—

कुमार ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त जो युवक ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन या साधन प्रणाली का अवलम्बन न कर सकें, उनके लिये हिन्दू चिकित्सा शास्त्र सुश्रुत संहिता से स्वास्थ्य रक्षा की संक्षिप्त-विधि नीचे लिखी जा रही है। इस अध्याय में जिन-जिन नियमों, सद्वृत्तियों तथा ऋतु चर्य्याओं का उल्लेख किया है, उनका उचित रूप से आचरण करने पर नियम तथा ऋतु के विरुद्ध कर्म्मों से उत्पन्न हुए भयङ्कर रोग से मुक्त होकर मनुष्य आरोग्य तथा दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है।

दिन-चर्य्या,—

प्रातः काल शय्या त्याग कर शौच क्रिया से निवृत होकर दन्त धावन करो। कषाय, मधुर तीते अथवा कड़ुए इत्यादि रसों में से जिस ऋतु में जो उपयोगी हो,

उसी रस युक्त काष्ठ के दातुन द्वारा दन्त धावन करना आवश्यक है। दन्तकाष्ठ बारह अंगुल लम्बा और कनिष्ठ अंगुली के समान मोटा, सीधा, ग्रन्थिशून्य, नया, हरा अक्षत और शुद्ध भूमि का उत्पन्न तथा प्रत्यग्र होना आवश्यक है। त्रिकूट (सोंठ, पीपल, काली, मिर्च,) त्रिसुगन्धि (छोटी इलायची, तेजपात और दारुचीनी) और गज पीपल का चूर्ण —में सेंधा नमक और तैल में मिलाकर दातुन की कुँची से दाँतों पर घिसने से मुंह की दुर्गन्धि, मल और श्लेष्मा नष्ट होकर मुख शुद्ध हो जाता है; इससे भोजन में रुचि उत्पन्न होकर मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। गला, तालु, ओंठ और जिह्वा इत्यादि सम्बन्धी एवं श्वास' कास, हिचकी तथा वमन रोग से पीड़ित दुर्बल, अजीर्ण रोगी, मूर्च्छा रोग ग्रस्त शिर की व्याधि से दुखी, प्यास से व्याकुल, मद्य पान से क्लिष्ट और दांत तथा कान की व्याधि से दुखी इन आदमियों का दातुन करना ठीक नहीं है। दातुन करने के बाद जीभ साफ करनी चाहिये। सोना, चाँदी अथवा लकड़ी को बनी हुयी दश अंगुल की लम्बी, मुलायम एवं मसृण जीभी से जिह्वा साफ करनी चाहिये जिह्वा साफ करने से मुंह का फीकापन, निरानन्द भाव, दुर्गन्ध, शोथ तथा जड़ता इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद मुँह में तैल इत्यादि स्नेह पदार्थों का गण्डष (कुल्ला) धारण करना चाहिए। इससे दाँतों की दृढ़ता और अन्न में रुचि उत्पन्न होती है।

मुंह धोने के बाद आँखों में अंजन लगाना चाहिये। अञ्जन लगाने के लिये सिन्धुनदी में उत्पन्न हुआ निर्म्मल स्रोताञ्जन प्रशस्त होता है। उसके द्वारा नेत्र का दाह, कण्डु (खुजलाहट), मल, दृष्टिमण्डल का क्लेद और वेदना (दर्द) इत्यादि पीड़ा दूर होकर नेत्रों में ठण्डक आती है और किसी प्रकार का रोग उत्पन्न नहीं होता। साथ ही शीतातप सहन करने की शक्ति भी आ जाती

है। लेकिन भोजन करने के बाद, मस्तक धोकर, थक जाने पर, रात्रि में अधिक जागरण करने पर तथा ज्वर में अंजन लगाना उचित नहीं है।

इसके बाद व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायाम करने से शरीर पुष्ट होकर कान्तिमान तथा गठीला और सुन्दर हो जाता है; इसके द्वारा पाचन की शक्ति बढ़ती है, आलस्य नष्ट हो जाता है, शरीर मज़बूत और हल्का हो जाता है एवं श्रान्ति (थकावट) तथा क्लान्ति दूर होकर पुष्टता (मोटापन) आती है। बयस, बल, शरीर, देश, काल तथा भोजन इत्यादि की विवेचना करके आधी थकावट आ जाने तक कसरत करते रहना चाहिये। मात्रा से अधिक व्यायाम करने पर क्षय, अरुचि, वमन, रक्तपित्त, भ्रम, क्लान्ति कास, शोष, ज्वर और श्वास इत्यादि के रोग उत्पन्न होते हैं। जिस व्यक्ति को रक्तपित्त, शोष, कास हो तथा जिसके शरीर में कोई घाव हुआ हो, जो दुर्बल, स्त्री प्रसङ्ग करने में क्षीण तथा भ्रमण करने से थका हुआ हो उसे कसरत न करनी चाहिये। भोजन के बाद भी व्यायाम करना अनुचित है। व्यायाम करने के बाद प्रत्येक अंग की मालिश करने और उन पर सुगन्धि द्रव्य लगाने से वायु, कफ़, और मेद नष्ट होते हैं तथा शरीर के अंग मज़बूत एवं चर्म्म निर्म्मल होता है।

स्नान करने के पहले सारे शरीर में तैल लगाना कर्त्तव्य है। शिर में तैल लगाने से शिर के रोग नष्ट होते हैं तथा बाल कोमल होकर लम्बे, घने चिकने और काले हो जाते हैं एवं मस्तक ठण्डा और सारी इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं; हल्का मस्तक भी परिपूर्ण हो जाता है। सारे शरीर में तैल लगाने से शरीर कोमल हो जाता है, वायु और कफ की समता हो जाती है, धातु पुष्ट होती है, चमड़ा मुलायम हो जाता है, और बल तथा सुन्दरता की वृद्धि होती है। पैर के तलुए में तेल लगाने से निद्रा अधिक आती है, आँखों की रोशनी बढ़ती है

तथा और भी कई लाभ होते हैं ; थकावट जाती रहती है, जड़ता नष्ट होती है एवं पैर का चमड़ा मुलायम हो जाता है। तैल के द्वारा कान पूर्ण करनेसे हनु मस्तक और कान की पीड़ा नष्ट हो जाती है ; परन्तु तरुण-ज्वर, अजीर्ण, तथा उल्टी दस्त के बाद उसी दिन तैल लगाने से बहुत हानि होती है।

तैल लगा कर स्नान करना चाहिये। स्नान करने से चित्त प्रफुल्लित होता है, शरीर की मलीनता दूर होती है, इन्द्रियाँ शुद्ध तथा रक्त स्वच्छ होता है, पाचकाग्नि बढ़ती है, तन्द्रा नष्ट हो जाती है एवं पाप दूर हो जाते हैं। सर्दी के दिनों में गर्म जल और गर्मी के दिनों में ठण्डे जल से स्नान करना चाहिये ; क्योंकि सर्दी के दिनों में ठण्डे जल से स्नान करने से कफ और वायु का प्रकोप एवं गर्मी के दिनों में गर्म जल से स्नान करने से पित्त और रक्त का प्रकोप बढ़ता है। लेकिन गर्म जल किसी ऋतु में भी मस्तक पर डालने से नेत्र को हानि होती है ; परन्तु फिर भी कफ़ और वायु की व्याधि की प्रबलता तथा निर्बलता का विचार करके गर्म जल के द्वारा शिर-स्नान किया जा सकता है। अतिसार, ज्वर, कर्णशूल, वायुरोग, अरुचि, आध्मान, (Tympa nitis) अजीर्ण इत्यादि रोगों में और भोजन करने के बाद कभी स्नान न करना चाहिये।

स्नान करके शरीर में चन्दन इत्यादि सुगन्धित वस्तुओं को लगाकर पुष्प, वस्त्र तथा रत्न इत्यादि धारण करे, तब फिर कङ्घी से बाल सवाँरे। शरीर में चन्दनादि लगाने से बल, सुन्दरता, प्रीति, ओज तथा सौभाग्य की वृद्धि होती है एवं स्वेद (पसीने की दुर्गन्धि), मलीनता, थकावट इत्यादि नष्ट हो जाती हैं। कपाल पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप करने से नेत्रों का तेज बढ़ता है और गण्डस्थल और बदन मोटा होकर कमनीय होता है; इससे व्यङ्ग बिड़क इत्यादि नष्ट हो जाती

हैं। पुष्प, वस्त्र तथा रत्न इत्यादि के धारण करने से वक्षोग्रह नाश ओज की वृद्धि, सौभाग्य, सुन्दरता तथा चित्त की प्रसन्नता बढ़ जाती है। कंघी करने से बाल बढ़ते हैं और मिट्टी, धूल, मैल इत्यादि साफ़ हो जाते हैं तथा जूँ इत्यादि भी मर जाती हैं।

इसके बाद देवता, अतिथि और ब्राह्मण इत्यादि की पूजा करके भोजन करे। जो वस्तु शरीर के लिये लाभदायक हो, केवल उन्हीं का परिमित मात्रा में भोजन करना चाहिये। स्वास्थ्य-कारक भोजन करने से चित्त की प्रसन्नता तथा बल की वृद्धि होती है, शरीर पुष्ट होना है और आयु, तेज, उत्साह, ओज, स्मरणशक्ति, तथा अग्नि इत्यादि की वृद्धि होती है। भोजन करने के बाद थोड़ी देर तक विश्राम करना चाहिये।

सन्ध्या के समय भ्रमण करना विशेष उपकारक होना है। भ्रमण करने से स्वास्थ्य को बड़ा लाभ होता है ; इससे आयु, तेज, ओज, बल, मेधा और अग्नि की वृद्धि होती है एवं इन्द्रियों की जड़ता विनष्ट हो जाती है। भ्रमण करते समय पादुका यानी खड़ाऊँ या जूता, छाता, दण्ड (छड़ी) और उष्णीष (पगड़ी) या टोपी) धारण करना चाहिये। पादुका (खड़ाऊँ या जूता) पहिनने से पैर के रोग नष्ट होते हैं, वीर्य्य, मन की प्रसन्नता तथा ओज इत्यादि की वृद्धि होती है एवं चलने में आराम मिलता है। नंगे पैर चलने से स्वास्थ्य का नाश होता है, आयु का क्षय तथा नेत्रों का तेज क्षीण होता है। छाता लगाने से वर्षा, लू, धूलि, धूप आदि से शरीर की रक्षा होती है ; कान्ति, सौन्दर्य नेत्रों की ज्योति और तेज की वृद्धि होती है ; दण्ड (छड़ी) लेकर चलने से बल, स्थैर्य्य और धैर्य्य बढ़ना है। उष्णीष यानी पगड़ी बाँधने से शरीर की पवित्रता और बालों की सुन्दरता बढ़ती है एवं वायु, धूप, आदि से मस्तक की रक्षा होती है।

रात्रि के समय परिमित (नपी-तुली) मात्रा में ठीक समय पर नींद लेने से बल, वर्ण, सुन्दरता, पुष्टि, उत्साह तथा अग्नि की वृद्धि होती है ; आलस्य एवं तन्द्रा दूर हो जाती है और धातु में समता आती है।

सद्वृत्ति

—:*०*:—

गुरुजनों और वृद्धजनों की आज्ञा का पालन करना परमावश्यक है। देवता, ब्राह्मण तथा पिता-माता इत्यादि गुरुजनों की निन्दा करना उचित नहीं है। समस्त प्राणियों का उपकार करना चाहिये।

अपने किसी परिचित या आत्मीय-सम्बन्धी से मुलाकात हो तो जहाँ तक हो सके, पहले आप ही उससे बात-चीत करना आरम्भ कर दें। समय के अनुसार हितकर तथा मधुर शब्दों में थोड़ी सी बात-चीत करनी चाहिये। किसी से द्वेषपूर्ण तथा मिथ्या बात न कहनी चाहिये।

गुरुजनों के सामने कभी ऊँचे आसन पर या खम्भे तथा दीवार से टिक कर बैठना भी उचित नहीं है। सभास्थल में जृम्भा (जमाई), उद्गार, छींक तथा लम्बी साँस इत्यादि का छोड़ना अच्छा नहीं है। चित होकर लेटना या रुद्र-आसन यानी भयङ्कर आसन पर बैठना भी उचित नहीं है। गला टेढ़ा करके विषम भाव से ग्रीवादेश (गर्दन) नहीं रखनी चाहिये। शरीर, नाखून, और मुँह इत्यादि बजाना भी अनुचित है। किसी आवश्यकता के बिना ही लकड़ी, पत्थर तथा तृण इत्यादि को तोड़ना या उठाना नहीं चाहिये।

मुंह से फूँक कर आग न जलानी चाहिये। जल में अपनी परछाईं (आत्म-प्रतिबिम्ब) देखना अशुभ है नग्न होकर जल में प्रवेश न करना चाहिये।

जुआ भी नहीं खेलना चाहिये। किसी प्रकार का नशा न करें। गाने-बजाने इत्यादि में भी आसक्ति न रक्खें। दूसरे की झूठी जमानत य साक्षी न दें। मात्रा से अधिक सोना, जागना, बैठना, घूमना, हँसना, बात-चीत करना, मैथुन तथा व्यायाम इत्यादि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।

जो चीजें स्वास्थ्य के लिये लाभ-दायक हों, केवल उन्हीं का भोजन करना चाहिये। दूसरों का स्पर्श किया हुआ अन्न या होटल का बना हुआ भोजन करना अनुचित है। हाथ, पैर, धोये बिना भोजन न करें। दिवा-रात्रि के सन्धि के समय यानी प्रातःकाल में एवं गोधूली में तथा उपयुक्त समय के सिवा भोजन न करना चाहिये। भग्न पात्रमें या अञ्जलीपुटमें पानी पान न करना चाहिये।

लोम तथा नख इत्यदि को हमेशा कटा रखना चाहिये। मस्तक पर बोझा न उठाना चाहिये। दूसरे का व्यवहार किया हुआ वस्त्र, माला तथा खड़ाऊँ इत्यादि न पहनना चाहिये। अनुपयुक्त स्थान पर या खुले मैदान में मल-मूत्र का त्याग करना तथा उनके वेग को रोकना उचित नहीं है।

अधिक मैथुन करना अच्छा नहीं है। ग्रीष्म ऋतु में प्रति मास एक दिन और अन्य ऋतुओं में प्रति मास तीन-तीन दिन के बाद स्त्री का प्रसंग करना चाहिये। रजस्वला, गर्भिणी, योनिरोग या अन्य व्याधि से पीड़िता, मलिना (मैली), अप्रिया, अनाचारी, उच्चवर्णवाली, अकामा (मैथुन की इच्छा न करने वाली), अपने गोत्र में उत्पन्न हुई, गुरुपत्नी, अवस्था में ज्येष्ठा (बड़ी), हीनाङ्गी (अङ्गभंग), अगम्या (जैसे चाची, मामी आदि) तथा प्रव्रजिता (संन्यासिनी) इत्यादि स्त्रियों का सहवास कदापि न करना चाहिये। प्रातःकाल, आधी रात के

समय, दोपहरी में लज्जाजनक या खुले हुए अथवा दूषित स्थान पर स्त्री प्रसङ्ग करना हानि कारक होता है। रमण करते समय ललाट देश (कपाल) खुला न रखना चाहिये। खड़े या चित् होकर मैथुन करना पुरुष को उचित नहीं है। तिर्य्यक् योनि में या योनि के अतिरिक्त अन्य छिद्र में वीर्य्य पात करने से तरह तरह की बुराइयाँ पैदा होती है। पेशाब या पाखाना लगा रहने पर मैथुन करने से शुक्राश्मरी रोग (पथरी) पैदा हो जाती है। मैथुन के बाद मीठी वस्तु, शक्कर मिले हुए दूध प्रभृति वस्तुओं का पीना और भोजन करना, स्नान करना, पङ्खा हांकना और सोना इत्यादि बहुत ही लाभदायक होते हैं।

ऋतुचर्य्या

वर्षाऋतु में मनुष्य का शरीर अस्वस्थ और अग्नि मन्द हो जाती है। इस से वायु इत्यादि दोषों का भी प्रकोप बढ़ जाता है। अतएव उन दिनों में उक्त दोषों का प्रतिकार करने के लिए कसैले, कड़ुये और तिक्त रस से युक्त द्रव्य न बहुत स्निग्ध, न बहुत रूखा, गर्म और अग्नि वर्धक अन्न का भोजन करना चाहिये खौले हुए जल को ठण्डा करके थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। व्यायाम या मैथुन का अधिक मात्रा में करना, ज्यादा सर्दी गर्म्मी लगाना बहुत देर तक तथा दिन में सोना हानिकारक है। भूवाष्प (जमीन की भाफ) से बचने के लिए दो मञ्जिले मकान में या चारपाई इत्यादि पर मोटा बिस्तर बिछाकर और ऊपर से भी कुछ ओढ़ कर सोना चाहिए वर्षा का जल या ठण्डी हवा शरीर को जरा भी न लगने पावे। इन दिनों में वायुनाशक वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये।

शरत् ऋतु में कसैला, मधुर और तिक्त रस, दुग्ध या ऊख के रस की बनी हुई वस्तु, मधु, चावल, मूँग आदि का जूस इत्यादि का भोजन करना और निर्मल जल का पान करना चाहिये। जल में तैरना, सन्ध्या समय चन्द्रमा की किरणों का सेवन करना, शरीर में चन्दन इत्यादि सुगन्धित द्रव्य लगाना, और अधिवासनक्रिया इत्यादि लाभदायक हैं। तिक्त-घृत का पान करना, रक्त मोक्षण और विरेचन क्रिया के द्वारा सञ्चित हुए पित्त को निकालना चाहिये। जिन वस्तुओं से पित्त का नाश होता है उनका सेवन करना आवश्यक है। तीक्ष्ण, अम्ल ऊष्ण, और क्षार द्रव्यों का भोजन करना एवं दिन में सोना रात्रि में जागरण और धूप का सेवन करना वर्जित है।

हेमन्त और शिशिर ऋतु के दिन ठण्डे और रूखे होते हैं। इन दिनों में सूर्य्य का तेज मन्द हो जाता है, वायु के प्रबल होने तथा उसका प्रकोप बढ़ जाने एवं सर्दी लगने से जठराग्नि पिण्डीभूत होकर उदरस्थ। पेट की रस धातु को सोखा करती है। इसलिए हेमन्त ऋतु में स्निग्ध यानी घी या तेल से बना हुआ और नमकीन तीता, मीठा मधुर और करुण इत्यादि रसों से युक्त सामग्रियों का भोजन करना चाहिये। तिल, उर्द, मटर, शाक, दही ऊख इत्यादि से बनी हुई सामग्रियाँ और पुराने या नये चावल इत्यादि पौष्टिक पदार्थों का भोजन किया जा सकता है। गर्म जल का पान करना और उस से स्नान करना लाभ-दायक होता है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में अपनी इच्छा के अनुसार अधिक मैथुन करने से भी विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती। सर्दी के कारण इन दिनों में लोगों का कफ इकट्ठा हुआ करता है।

वसन्त ऋतुमें वही कफ गर्म्मी पा कर कुपित हो जाता है। इसलिये उन दिनों में खट्टी, मधुर, (मीठी) नमक रस विशिष्ट चीजें, स्निग्ध (चिकनी)

और गरिष्ट सामग्रियों का भोजन त्याग देना चाहिये । वमन आदि क्रिया द्वारा कफ गिरा देना आवश्यक है। साठी धान और यव (जौ) का अन्न, शीत वीर्य्य (ठंडे गुण वाली) सामग्री, मूंग की दाल का जूष, परवल, बैंगुन तीता, कड़ुआ, खारा, कसैला नीम की पत्तियाँ, रूखा और गर्म भोजन, मध्वसव, अरिष्ट, माध्वीक, मधु और आसव पान, व्यायाम, नेत्र में अञ्जन, तेज तम्बाकू पीना और कम्बल धारण तथा कुछ गर्म जल में स्नान तथा गर्म जल का पान करना वसन्त ऋतु में लाभदायक है। इन दिनों में बगीचे में तथा उपवन में घूमने से बड़ा लाभ होता है।

ग्रीष्म ऋतु में व्यायाम, परिश्रम, गर्म चीजों का सेवन मैथुन, रक्त को सुखाने वाले अन्न तथा कड़ुए, खारे और खट्टे रस से युक्त सामग्रियों का भोजन इत्यादि का परित्याग करना चाहिये। तालाब या नदी में स्नान तथा मनोरम बाटिका या कानन में भ्रमण करने, चन्दन इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों के लगाने, कमल इत्यादि पुष्पों की माला या मोती, इत्यादि रत्नों के हार पहनने, ताड़ की पत्ती से बने हुए पङ्खे द्वारा वायु सेवन करने, ठंढा घर में रहने और पतले कपड़े पहनने में बड़ा सुख मिलता है। सुगन्धित अर्क मिला हुआ मिश्री या शक्कर का शरबत, अथवा खण्ड पानक यानी गुड़ का शरबत तथा शक्कर मिले हुए मट्ठे के पीने और घी से युक्त मीठे, ठण्डे एवं मधुर द्रव्य-प्राय सामग्रियों का भोजन करना लाभदायक होता है। रात्रि के समय चीनी मिला हुआ गाढ़ा दूध पीकर छत इत्यादि ऊँचे स्थान पर फूलों से सजी हुई शय्या पर शरीर में चन्दन इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों को लगाते हुए सुखमय वायु का सेवन करना चाहिये।

यौगिक-प्रक्रिया

—*:०:*—

स्वर-शास्त्र में कहे हुए निम्न-लिखित नियमों का पालन करने से शरीर के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष फल प्राप्त होता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल शय्या से उठते ही नासिका के द्वारा ठण्डा जल पिया करे। एक अच्छी सी बड़ी कटोरी में जल भर कर उसी में नाक डुबा दे और धीरे-धीरे पीने का अभ्यास करे। इससे न सर्दी होगी और न मस्तक में पीड़ा होगी एवं मस्तिष्क (दिमाग) सदा ठंढा (तर) रहेगा।

नींद टूटते ही चारपाई से उठकर मुँह में जितना जल आ सके भरकर आँख पर २०।२२ बार जल का छींटा देते रहना चाहिये। भोजन कर चुकने पर कुल्ला करने के बाद भी ७/८ बार जल का छींटा देकर आँख धोना आवश्यक है। अगर किसी भी कारण से मुख धोये तो आँखें धोना भी न भूलना चाहिये।

तेल लगाते समय सब से पहले पैर के अंगूठें के नाखूनों को तेल से पूर्ण करना परमावश्यक है। इस से नेत्र तेजवान होकर बहुत दिनों तक कार्य्य के योग्य बने रहते हैं और नेत्रों में किसी प्रकार का भी रोग उत्पन्न नहीं होता।

मलमूत्र त्यागके समय अपने दाँतों को बड़े जोर से दबा रखना चाहिये। जब तक मलमूत्र त्याग करते हो, तब तक इसी क्रिया के करने से जल्दी दाँत नहीं गिरते एवं मजबूत होकर बहुत दिनों तक कार्य्यक्षम रहते हैं।

भोजन करते और मल त्यागके समय दाहिनी नाक से जल पीने एवं पेशाब करते समय बांई नाक से श्वास चलने से किसी प्रकार का भी रोग नहीं उत्पन्न होने पाता है खास कर अजीर्ण और उदरामय इत्यादि रोग रहने पर तो विशेष लाभ होता है। जिस नथने से साँस खींचनी हो, उसके विपरीत (उलटा) करवट सोने से ही श्वास बदल जायगा।

भोजन करने के बाद कङ्घी से ४-५ मिनट तक बाल झाड़ने से वात, मस्तक की पीड़ा इत्यादि रोग उत्पन्न नहीं हो सकते। कङ्घी इस प्रकार चलाना चाहिये जिस से कि मस्तक के चमड़े में उसके दाँत जरा जोर से लगते जाँय। इससे बाल जल्दी नहीं पकते। कंघी रबर या सेल्युलाईड की बनी हुई नहीं बल्कि सींग या लकड़ी की होनी चाहिये।

भोजन के बाद पैर की पगथली को पोछे की ओर मोड़ कर वीरासन से १०-१५ मिनट तक बैठे रहने से वात व्याधि नहीं उत्पन्न हो सकती।

चित्त को एकाग्र करके प्रतिदिन श्वेत, कृष्ण और रक्त वर्ण का ध्यान करने से कफ, पित्त और वायु इत्यादि तीनों धातुओं में समानता होती है।

प्रतिदिन नाभि में वायु धारण करने एवं नाभिकन्द का ध्यान करने से पाचन की शक्ति और जठराग्नि बढ़ती है।

ललाट में पूर्णचन्द्रमा के समान ज्योति का ध्यान करने से या गव्य-घृत में अपनी परछाँई देखने से आयु बढ़ती है।

किसी भी प्रकार का रोग मालूम पड़े तो उस समय जिस नथने से श्वास चलता है, उसे तुरन्त ही बन्द कर देना चाहिये। जब तक वह अच्छा न हो जाय, तबतक उससे श्वास न लेना चाहिये।

प्रतिदिन दिन के समय बाँयी नासिका और रात्रि के समय दाहिनी नासिका से श्वास लेने का अभ्यास हो जाय तो आरोग्यता और दीर्घ-जीवन प्राप्त करके मानव चिरकाल तक युवा रह सकता है।

———

औषधि और चिकित्सा

—:*:—

जो लोग शिक्षा के दोष, अवस्था की चञ्चलता और कुसंसर्ग में पड़ कर अत्याचार की नरक-रूपी अग्नि में कूद रहे हैं, आत्मशक्ति खो बैठे हैं, जिनका वीर्य्य बहुत पतला हो गया है तथा धारणा-शक्ति बिलकुल कम हो गई है, उनके लिये ब्रह्मचर्य्य का पालन करने के अतिरिक्त और कोई भी उपाय नहीं है। स्वप्न विकार तथा धातु की दुर्बलता इत्यादि निन्दित रोग (जिन की चिकित्सा भी बड़ी कठिनता से हो सकती है) पैदा होने पर ब्रह्मचर्य्य के सिवा और कोई भी उपाय नहीं हो सकता ;—औषधियों का सेवन करने से यह रोग अच्छे नहीं होते। इनका एकमात्र उपाय और चिकित्सा केवल ब्रह्मचर्य्य ही है। इन रोगों से पीड़ित मनुष्यों का दृढ़ प्रतिज्ञा करके ब्रह्मचर्य्य पालन करना और नीचे लिखे हुए नियमों का अवलम्बन करना चाहिये।

प्रतिदिन शयन करने के पहले ठण्डे जल से कमर तक शरीर धो डाले। यदि ऐसा न कर सके तो, हाथ, पैर, नाभि, पेट के नीचे का भाग और अण्डकोष, जननेन्द्रिय इत्यादि तो धो ही डालना चाहिये। इसके बाद स्वच्छ शय्या पर लेट कर भगवान का ध्यान करते करते सो जाय और बड़े सबेरे शय्या से उठे।

लँगोट या कौपीन का उपयोग करना बहुत आवश्यक है। अण्डकोष को नीचे की ओर लटका कर और जननेन्द्रिय को ऊपर उठाकर खूब जोर से कसकर लंगोटा बाँधना चाहिये। रात दिन में तीन चार बार लँगोट बदलना तथा धो डालना चाहिये।

जल में नाभि तक शरीर डुबा कर दोनों पैरों के अंगूठों ने भूमिका अवलम्बन करके शून्य स्थान में बैठ कर पैर की दोनों एड़ियों पर गुह्यदेश रख कर उसे बार-बार सिकोड़े और फैलाये।

प्रतिदिन सोने के पहले दो रत्ती भर कपूर का चूर्ण और चार रत्तीभर कबाब-चीनी (नाग केसर) का चूर्ण मिला कर सेवन करे एवं उदर पूर्ण करके ठण्डा जल पान करे।

तुलसी की जड़ वीर्य्य-वर्द्धक होती है।

बिदारी कन्द के फल और मूल का चूर्ण करके दो तोला की मात्रा में घृत और दूध के साथ सेवन करने पर वृद्ध भी युवा के समान हो जाता है।

आँवले के चूर्ण को उसीके रस में भावना देकर चीनी और घी मिला कर रात्रि के पहले भाग में मधु के साथ लेहन (चाटने) करने से पुरुषोपत्व की वृद्धि होती है।

बहुत पुराने सेमर की जड़ के रस को चीनी के साथ सेवन से वीर्य्य बढ़ता है।

उर्द की धोई दाल को पहले घी में भून कर दूध में सिद्ध कर ले चीनी के साथ प्रतिदिन उसका सेवन करने से वीर्य्य दृढ़ होता है।

सेमर के छोटे वृक्ष की जड़ का चूर्ण और तालमूली के चूर्ण को समभाग में मिलाकर २ तोला की मात्रा में घृत और दुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य्य का स्तम्भन होता है।

भूमिकुष्माण्ड (विदारी कन्द) का चूर्ण बीस तोला लेकर उसके बीस तोला रस में भावना देकर उस में २० तोला गाय का घी और १२ तोला मधु मिलावे, सोइ आधा तोला की मात्रा में प्रतिदिन सुबह शाम खाने से प्रमेह और धातु दौर्बल्य रोग नष्ट होकर पुरुषत्व की वृद्धि तथा आरोग्य लाभ होता है।

आपामार्ग वच सोंठ बिड़ङ्ग सलुफा शतमूली गुरुच (गिलोय) और हरड़ इत्यादि समभाग में चूर्ण करके घृत के साथ दो तोले की मात्रा में सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।

शरत् ऋतु में चीनी के साथ, हेमन्त में सोंठ के चूर्ण के साथ, शिशिर ऋतु में पीपल के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ, ग्रीष्म में गुड़ के साथ और वर्षा ऋतु में सैंधा नमक के साथ बड़ी का सेवन करने से बल बीर्य्य बढ़ता है, शरीर सर्वदा आरोग्य रहता और यौवन स्थिर रहता है।

अश्वगन्धा, यमानी, निमूथा, कुड़ त्रिकटु, सलूफा, सोंठ तथा सेन्धा नमक आदि समभाग में एवं इनका आधा लालवच लेकर सब का चूर्ण बना ले और दो तोले की मात्रा में घी और मधु के साथ सेवन करे। इस औषधि के पच जाने पर दूध पीवे। इस से मेधाशक्ति (बुद्धि) बहुत बढ़ती है।

तेजमूली, शतमूली, भूमिकुष्माण्ड (विदारी कन्द), अश्वगन्धा, गोष्म शाल्मली, कूटज, गोक्षुर (गोखरू) वालामूल, बानरी बीज, काकोली, क्षीरकाकोली आदि को समभाग में लेकर चूर्ण कर ले। अन्त में तीन पल भैंस दूध में पीस कर एक पल चीनी मिलावे और तीन सप्ताह तक सेवन करे। इसका अनुपान नागर-मोथे का रस। यह औषधि बहुत ही तेजवर्द्धक, पुष्टिकर और वीर्य्यवर्द्धक है।

समाप्त

ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

आसाम बंगीय सारस्वत मठ प्रतिष्ठाता
श्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती परमहँसदेव का
अमर अवदान

सारस्वत ग्रन्थावली

ब्रह्मचर्य्य-साधन

बंगला चतुर्दश संस्करण २.२५, हिन्दी तृतीय संस्करण २.५०

१। योगी गुरु

सहज उपाय से योग शिक्षा का अपूर्व ग्रन्थ है। पाठकों को अवगत कराने के लिये नीचे सूचीपत्र संक्षेप में उद्धृत होता है :—

योग-कल्प में ग्रन्थकार का साधन-पद्धति संग्रह, योग क्या है, शरीर-तत्त्व, हँसतत्त्व, प्रणव तत्त्व, कुलकुन्डलिनी-तत्त्व, विशेष बात योगतत्त्व, योग के आठ अङ्ग, चार प्रकार के योग, गुह्य विषय आदि।

साधन-कल्प में आसन साधन, तत्त्व साधन, नाड़ी-शोधन, त्राटक योग आत्मज्योतिः दर्शन, इष्ट देवता मुक्त इत्यादि।

मन्त्र-कल्प में दीक्षा-प्रणाली सदगुरु, मन्त्र-तत्त्व, मन्त्र जगना, मन्त्र-सिद्धि का सहज उपाय, जपका कौशल और मन्त्र सिद्धि का लक्षण आदि।

स्वर-कल्प में साँसका स्वाभाविक नियम, साँसका फल, वशीकरण, बिना दवाके रोग को आराम करना, कई-एक अश्चर्य भरे संकेत, चिर यौवन लाभ का उपाय, पहले ही मृत्यु जान लेनेका उपाय इत्यादि।

बंगला चतुर्दश संस्करण ३.००   हिन्दी तृतीय संस्करण ३.००

२। ज्ञानी गुरु

इसमें ज्ञान और योग के उचाङ्ग समूह की विशदरूप में आलोचना हुई है। पाठकों की सुविधा के लिये नीचे सुची दी जा रही है।

नानाकान्ड में—धर्म क्या है, धर्म की प्रयोजनीयता, गुरुकी आवश्यकता, शास्त्र-विचार, तन्त्र-पुराण, सृष्टि तत्त्व और देवता रहस्य, एकेश्वरवाद और कुसं-

स्कार खण्डन, हिन्दू धमका गौरव, हिन्दुओं की अवनतिका कारण, हिन्दू धर्मका विशेषत्त्व, द्वैताद्वैत विचार, कर्मफल और जन्मान्तरवाद आदि।

ज्ञानकान्ड में—ज्ञान क्या है ज्ञानके विषय, साधन चतुष्टय, अनन्त रूपका प्रमाण और प्रतीति, समाधि अभ्यास, ज्ञानयोग, ब्रह्म निर्वाण इत्यादि।

साधन कान्ड में—साधन का, प्रयोजन, मायावाद कुन्डलिनी साधन, अष्टाङ्ग योग और उसका साधन, प्रणायाम साधन प्रकृति पुरुष योग, योनि मुद्रा साधन भूतिशुद्धि साधना, जीव मुक्ति योगवलसे देहत्याग आदि।

बंगला दशम संस्करण, हिन्दी प्रथम संस्करण—४·००

३। तांत्रिक गुरु

इस देश में तन्त्रमन्त्र ही दीक्षा और नित्यनैमित्तिक कार्य कलाप हुआ था। सुतरां यह ग्रन्थ साधारण लोगों के लिये विशेष प्रयोजनीय है। साधारण लोगों को अवगति के लिये नीचे सुची पत्र संक्षेप में उद्धृत होती है।

युक्ति कलमें— तन्त्र शास्त्र, तन्त्रोक्त साधन, म-कार तत्त्व, सप्त आचार भावत्रय तन्त्रोक्त ब्रह्मवाद, शक्ति उपासना और देव मूर्त्ति तत्त्व, साधना का क्रम इत्यादि।

साधन कलर में— गुरुकरण और दीक्षा पद्धति शाक्ताभिषेक, पूर्वाभिषेक, अन्तर्ध्यान या मानस पूजा जपरहस्य और समर्पण विधि पञ्चम-कार से काली साधन, चक्रानुष्ठान, तन्त्र का ब्रह्मसाधन, तन्त्रोक्त योग और मुक्ति इत्यादि

परिशिष्ट में—योगिनी साधन, हनुमद्देव वीर साधन, सर्वज्ञनालाभ, दिव्यदृष्टि लाभ, अदृश्य होने का उपाय, अग्नि निवारण, शूल रोग प्रतिकार सर्व रोग शान्ति, कपितय मन्त्र की आश्चर्य प्रक्रिया आदि।

बंगला नवम संस्करण ३-००　　　　हिन्दी प्रथम संस्करण ३-५०

४। प्रेमिक गुरु

इसमें जीवन की पूर्णतम साधना प्रेम भक्ति और मुक्तिका विषय विशद रूप में वर्णित हुआ है। पाठकों को समझाने के लिए संक्षेप में सूची उद्धृत हुई है।

पूर्व स्कन्ध में—भक्तितत्व, साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेम भक्ति, भक्ति विषय में अधिकारी, भक्ति लाभ का उपाय, चैतन्योक्त साधन पञ्चक, पञ्च भाव

का साधन, राधा कृष्ण और अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व, शाक्त और वैष्णव, किशोरी भजन, शृंगार साधन इत्यादि।

उत्तर स्कन्ध में—भक्ति ही मुक्ति का कारण, मुक्ति का स्वरूप लक्षण वेदान्तोक्त निष्ठा में मुक्ति, मुक्तिलाभ का उपाय, सन्यासाश्रम ग्रहण, अवधूतादि सन्यास सन्यासी का कर्त्तव्य भगवान् शंकराचार्य्य और तद्धर्म आचार्य शङ्कर और गौराङ्ग देव, भगवान रामकृष्ण, जीव मुक्त अवस्था इत्यादि।

बंगला अष्टम संस्करण ३२५, हिन्दी (यन्त्रस्थ) ४००

६। माता की कृपा

इस ग्रन्थ में माता कौन है और किस रूप में माता की कृपा प्राप्त की जाती है। यह अधिकार भेद में विवृत हुआ है। श्री गुरु की कृपा ही साधना और सिद्धि का मूल है, यह सत्य घटना के द्वारा लिखित हुआ है। माता के सब उपदेश श्री मुख से प्रदत्त हैं।

बंगला अष्टम संस्करण ०-६० हिन्दी द्वितीय संस्करणा २-००

२४. उपदेश रत्नमाला

इस पुस्तक में ऋषि और साधु महापुरुषों का कर्म ज्ञान और भक्तिमूलक कई आध्यात्मिक तत्व पूर्ण उपदेश लिखित है।

बंगला सप्तम संस्करण ०५०, हिन्दी ०·५०.

प्राप्तिस्थान

दक्षिण बंगला सारस्वत आश्रम

पो. हालिसहर जिला २४ परगना

(पश्चिम बङ्ग)

महेश लाईब्रेरी

१/८ श्यामा चरण दे स्ट्रीट (कालेज स्क्वायर)

कलकत्ता-१२